मूल्य : रु. ६/-
अंक : १७९
नवम्बर २००७

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

अभलोड-गरबाडा जि. दाहोद (गुज.) के आदिवासी विस्तार में श्री आसारामायण पाठ व भगवन्नाम संकीर्तन के बाद विशाल भंडारे का आयोजन तथा रायपुर (छ.ग.) में पूज्यश्री के आत्मसाक्षात्कार दिवस पर भोजन-प्रसाद का वितरण।

समस्तीपुर (बिहार) में पूज्य बापूजी के आत्मसाक्षात्कार दिवस के उपलक्ष्य में दरिद्रनारायणों में भोजन-प्रसाद, दक्षिणादि का वितरण तथा सासाराम, जि. रोहतास (बिहार) में भंडारे का आयोजन।

जमशेदपुर, जि. पूर्वी सिंगभूम (झारखण्ड) में पूज्य बापूजी के आत्मसाक्षात्कार दिवस पर गरीबों में अन्न, वस्त्र आदि वितरण करते शिष्यवृंद तथा उपस्थित दरिद्रनारायणों का विशाल समूह।

बड़पाल पंचायत, जि. बालेश्वर (उड़ीसा) के झांपारा एवं ओलंडा क्षेत्र में बाढ़पीड़ितों के लिए राहत कार्य।

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

वर्ष : १८ अंक : १७९
नवम्बर २००७ मूल्य : रु. ६-००
कार्तिक-मार्गशीर्ष वि.सं.२०६४

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.

ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
अन्य जानकारी हेतु फोन : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
: ashramindia@gmail.com
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, "सुदर्शन", मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद - ३८०००९. गुजरात
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

सत्संग से दिव्य जीवन की ओर

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

आपके जीवन में सत् का संग है कि नहीं ? अगर है तो आप बहुत भाग्यशाली हैं, नहीं है तो आपकी स्थिति दयाजनक है क्योंकि सत्य का सुख ही सच्चा सुख है, सत्य का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है और सत्य का संग ही सच्चा संग है । बाकी सब कच्चा और व्यर्थ संग है । व्यर्थ संग कर-करके तो कई जिंदगियाँ बरबाद हो गयीं ।

बालक का बचपन में बालकों के साथ संग होता है । किशोरावस्था में किशोरों के साथ संग होता है, फिर विद्यालय के विद्यार्थियों के साथ संग होता है । शादी-विवाह करते हैं तो पति-पत्नी, सास-ससुर, रिश्ते-नातों के साथ संग होता है । नौकरी करते हैं तो दफ्तरवाले साहबों, नौकरों के साथ संग होता है । फिर दुकान में संग, पड़ोस में संग, यात्रा करते समय रेलगाड़ी में संग, जहाज में संग... हर दशा में संग मिलता ही है । बिना संग के कोई नहीं रहता । खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है, ऐसे ही संग का रंग भी लगता है, लगता है, लगता ही है !

परंतु इन सारे संगों का फल क्या ? ये मोह-माया बढ़ाकर जीव को जन्म-मरण के चक्र में ले आते हैं किंतु जो संग हमको दुःखों से छुड़ा दे, हमको गुलामी से छुड़ा दे, हमको 'भविष्य में सुखी होंगे, ये पायेंगे तब सुख होगा, इधर जायेंगे तब सुख होगा, ऐसा करेंगे तब सुख होगा...' ऐसी सारी मजदूरी, बेवकूफी से छुड़ा दे और हम जहाँ हैं वहीं पूर्ण सुखी, पूर्ण आनंदित व अमर आत्मा हैं - यह अनुभव करा दे, ऐसे संग को बोलते हैं सत्संग । बाकी सब असत् संग हैं ।

भगवान कहते हैं : **...समः संगविवर्जितः ।** (गीता : १२.१८) जो द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति (संगदोष) से रहित है वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है ।

संग तो होगा, आप अपनेको संग के दोष से वर्जित करिये, बचाइये । संगदोष क्या है ?

जो आपको भविष्य में सुख के लिए अथवा वर्तमान में विकारी सुख के लिए पापों में, विषयों में, विकारों में गिरा दे, चिपका दे, खिसका दे वह है कुसंग और जो गिराता नहीं, चढ़ाता नहीं वह है सामान्य संग । जैसे आप घर से दुकान या दफ्तर में जाने के लिए निकले तो रास्ते के यातायात में कइयों का संग होता है । उनके संग का आपके ऊपर कोई रंग नहीं लगता, उनमें आप कहीं फँसते नहीं; केवल जिसमें आपका राग है उसमें फँसते हैं या जिसमें आपका द्वेष है उसमें फँसते हैं । ऐसे ही **यह संसार भी एक यातायात है । इसके संग का रंग आपके ऊपर न लगे । आपके संग का रंग भले दुनियावालों को निहाल कर दे लेकिन गड़बड़ीवाला संग आपको बेहाल न करे इसकी सावधानी का नाम है विवेक ।**

भगवान कहते हैं :

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ।।

'हे भरतवंशी अर्जुन ! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोह से सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञता को प्राप्त हो रहे हैं ।' (गीता : ७.२७)

व्रजं गच्छ । 'हे श्रेष्ठमार्ग पर गमन के इच्छुक ! विद्वानों के सत्संग को प्राप्त कर ।' **(यजुर्वेद : १.२५)**

इन संगों के कारण इच्छा पैदा हो जाती है, द्वेष पैदा हो जाता है कि 'यह करूँ-यह न करूँ, इसको ठीक करूँ, इसको पाऊँ...' ऐसा करते-करते जिससे पाया जाता है उसको भूल जाते हैं और जो पा-पा के अपनेको खपा देना है उसीमें खप जाते हैं। सभी इसी प्रकार के संग से इच्छा-द्वेष की लपेट में बार-बार जन्मते, बार-बार मरते हैं। कितना-कितना पढ़ते हैं, चिकित्सक बन जाते हैं, वकील बन जाते हैं, उद्योगपति बन जाते हैं लेकिन दुःखों से नहीं छूटते और अंत में बेचारे पछता के मर जाते हैं। सब मोहित हो जाते हैं ऐसी भगवान की माया है। तो अब क्या करना चाहिए ?

भगवान कितनी ऊँची बात कहते हैं :

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

'यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं।' **(गीता : ७.१४)**

माया तरना दुस्तर है लेकिन एक सुंदर उपाय है। जो भगवान की शरण आ जाता है वह माया को तर जाता है। अर्थात् जो सत्यस्वरूप परमात्मा का संग करता है, सत्यस्वरूप परमात्मा को सार मानता है, वह परमात्मा आनंदस्वरूप है, सुखस्वरूप है, चैतन्यस्वरूप है, मेरा आत्मा है, मेरा परम सुहृद है, आत्मरूप से सदा मेरे साथ है, शरीर साथ नहीं देगा लेकिन शरीर मरने के बाद भी वह चैतन्यस्वरूप मेरे साथ है- ऐसा मानता है वह माया को तर जाता है। कुछ पाकर, कहीं जाकर, कुछ भोगकर सुखी होना यह तो विषय-विकारोंवाले का काम है।

दिले तस्वीर है यार !
जब गर्दन झुका ली, मुलाकात कर ली।

परमेश्वर के ध्यान से, ज्ञान से वह इतना पूर्ण हो जाता है कि देवता भी उसका अभिवादन करके अपना भाग्य बना लेते हैं, यक्ष, गंधर्व, किन्नर भी उसके दर्शन करके अपना भाग्य बना लेते हैं ऐसा है वह परमेश्वर चैतन्य का संग ! और सत्यस्वरूप परमात्मा का संग करानेवाली शास्त्रीय वेद-वेदांत की बातों को सुनना, विचारना इसको बोलते हैं सत्संग।

आपके जीवन में संत का संग है कि नहीं ? जीवन में संत के सत्संग का प्रवेश है कि नहीं ? अगर नहीं है तो आपकी स्थिति खतरे से खाली नहीं है क्योंकि आपको फिर नश्वर संग मिलेगा। नश्वर संग में मोह माना उलटा ज्ञान होगा। जिसको छोड़कर मरना है उस शरीर को तो 'मैं' मानेंगे और जो आपके साथ चलेगी नहीं उस पदवी को, सत्ता को, धन को और वाहवाही को अपनी मानेंगे। यह बेवकूफी साथ में ही रहेगी तो फिर राग-द्वेष लेकर फिर कहीं जन्मेंगे और कहीं मरेंगे। यह बड़ा भारी घाटा है।

कितना भी धन मिल गया लेकिन छूटेगा तो सही। कितनी भी सत्ता मिली, कितना भी कुछ मिल गया छूटेगा तो सही। ऐसा कोई फूल नहीं जो मुरझाये नहीं। ऐसा कोई शरीर नहीं जो मरे नहीं। ऐसा कोई मिलन नहीं जिसका अंत बिछुड़ने में नहीं हो। इन बिछुड़ने और बिगड़नेवाले संग का सत्-उपयोग कर लें। बहुतों के सुख में इनका सत्-उपयोग कर लें। बहुतों के दुःख हरने में अपने हृदय को करुणामय करके रसमय बना दें तो इन संगों का सत्-उपयोग होकर आपको सत्य सुख में, सत्य ज्ञान में जगा देगा। यह हो जायेगा कर्मयोग।

संग तो सबको होता ही है लेकिन उत्तम संग यह है कि जिस संग से सत्-स्वरूप परमात्मा का रंग लगे और आप हर हाल में दुःख से पार हो जायें,

स्वस्ति पन्थामनु चरेम। 'हम कल्याणमार्ग के पथिक हों।' (ऋग्वेद : ५.५१.१५)

चिंता से पार हो जायें, भय से पार हो जायें, अज्ञान, शोक, मोह से पार हो जायें और जहाँ जायें वहाँ आनंदस्वरूप सुख में जगें इसका नाम है सत्संग।

सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥

(रामचरित. बा.कां. : २.३)

अगर मनुष्य-जीवन में सत्संग नहीं मिला तो बड़ी हानि हुई, बड़े-में-बड़ी हानि हुई। बोलते हैं :

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही ।
चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

(रामचरित. उ.कां. : ६८.४)

सिद्ध पुरुषों का संग उन्हींको मिलता है जिन पर भगवान कृपा करके दृष्टि डालते हैं।

भगवान को अपना मानकर प्रीतिपूर्वक सुमिरन करते हैं तो यह भक्तियोग हो जायेगा। 'मैं कौन हूँ ? भगवान मेरे से कितने दूर हैं ? भगवान का स्वरूप क्या है ? मेरा स्वरूप क्या है ? और जगत् का स्वरूप क्या है ?'- इस प्रकार का विवेक-वैराग्यसहित वेद-वेदांत, शास्त्र के अनुरूप अपनी बुद्धि को परमात्मा में स्थिर कर दिया- यह हो गया ज्ञानयोग। कर्मों का सदुपयोग- कर्मयोग, भाव का सदुपयोग- भक्तियोग और विचारों का सदुपयोग- ज्ञानयोग है।

सत्स्वरूप ईश्वर के लिए जो भी होगा वह सत्संग है। एकाग्रता से सामर्थ्य आयेगा, हजारों वर्ष का लंबा आयुष्य मिल सकता है, ऋद्धि-सिद्धि मिल सकती है, निष्कंटक राज्य मिल सकता है, जैसे- हिरण्यकशिपु, रावण आदि को मिला था लेकिन हृदय की तृप्ति नहीं हो सकती, वासना की जलन नहीं मिट सकती।

बिनु रघुबीर पद जीय की जरनि न जाई ।

परमात्म-विश्रांति के बिना जीवात्मा की वासनामय जलन जाती नहीं। मन एकाग्र होने से ऋद्धि-सिद्धि, जागतिक सफलताओं की प्राप्ति होती है। बुद्धि एकाग्र होने से परमात्म-प्राप्ति होती है।

तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता । (गीता : २.५७)

उसकी प्रज्ञा परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाती है। परमात्मा में प्रतिष्ठित बुद्धि ऋतंभरा प्रज्ञा कही जाती है।

जो भगवान को प्रसन्न रखने के लिए प्रयत्न करते हैं, भगवान उनका कल्याण करने के लिए संतों का संग देते हैं।

अब मोहि भा भरोस हनुमंता ।
बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥

(रामचरित. सुं.कां. : ६.२)

विभीषण ने हनुमानजी से कहा कि 'अब मुझे भरोसा हुआ कि भगवान की मुझ पर कृपा है। मेरी प्रार्थना या चिंतवन भगवान ने स्वीकार किया है क्योंकि संतरूप आप मुझे मिले हो। मैं भगवान का चिंतन करता हूँ; बाकी तो हनुमानजी मेरी हालत कैसी है, जैसे दाँतों के बीच में जीभ रहती है, ऐसे ही अहंकारी रावण और उन्हींके जैसे राक्षसी स्वभाववालों के घेरे में मैं रहता हूँ।'

जो भगवान के प्रेमी हैं, भगवान की वार्ता सुनाते हैं और भगवान का चिंतवन करके दुःख हर लेते हैं, ऐसे सत्संग देनेवाले संत मिल गये तो समझ लो भगवान की कृपा पक्की है, पक्की है, पक्की है ! नहीं तो संसार में क्या है ?

कितने मुफलिस[1] हो गये, कितने तवंगर[2] हो गये ।
खाक में जब मिल गये, तो दोनों एक हो गये ॥

यह अमीर की राख है अथवा उसके चपरासी की राख है पता नहीं चलेगा। जो राख बननेवाला

१. गरीब २. अमीर

अच्छा नक्षि द्युमत्तमँ्रयिं दाः । 'हे सर्वव्यापक प्रभो ! आप हमें प्रकाशयुक्त विद्या और मोक्षरूपी धन भलीप्रकार प्राप्त कराइये ।' **(यजुर्वेद : ३.३५)**

शरीर है उसीको 'मैं' और उसकी वाहवाही, उसकी सुविधा को 'मेरी' मानने की जो बेवकूफी है, वह अन्य सभी प्रकार के संग कर लो तो भी नहीं मिटती है, केवल सत्संग से ही मिटती है। 'आत्मा सुखस्वरूप, चैतन्यस्वरूप, अमर है; आप सब छोड़ेंगे, शरीर भी छूट जायेगा फिर भी सुखस्वरूप आपका आत्मा आपसे नहीं छूटेगा।'- ऐसा ज्ञान और ऐसा अनुभव कराना यह सत्संग की ताकत है, दूसरे किसी संग की ऐसी ताकत नहीं है। इसके लिए

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटि त्यक्त्वा हरिभजेत्॥

'सौ काम छोड़कर समय से भोजन कर लो, हजार काम छोड़कर स्नान कर लो, लाख काम छोड़कर दान-पुण्य कर लो और करोड़ काम छोड़कर परमात्मा की प्राप्ति में लग जाओ।' □

प्रश्नोत्तर

प्रश्न : किस तरह की शिक्षा-प्रणाली होनी चाहिए ?

पूज्यश्री : वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ऐहिक है। इससे नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है, सच्चे आध्यात्मिक सुख से दूर होते जाते हैं। एम.बी.ए. करने का अर्थ लोगों को चिकनी-चुपड़ी बातें कर मूर्ख बनाओ, लूटो, लूटकर अमीरों को दो और थोड़ा-सा पाकर अपना जीवन खपाओ, जीवनदाता से दूर हो जाओ; कैसी बेतुकी बातें हैं !

शिक्षा-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें लोगों के कल्याण की भावना हो। उज्जैन के सत्संग में प्रदेश के शिक्षामंत्री सत्संगियों के बीच आकर बैठे थे। उन्हें मैंने इसलिए 'युवाधन सुरक्षा' पुस्तक दी है कि वे प्रदेश के सभी विद्यार्थियों तक योग व अध्यात्म की शिक्षा पहुँचायेंगे।

प्रश्न : सरकार ने रामसेतु की प्रामाणिकता के लिए राम के साक्ष्य माँगे हैं। यह कहाँ तक सही है ?

पूज्यश्री : यह देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे जन-प्रतिनिधि देश को मिले हैं। करुणानिधि से कहो कि पहले अपनी २-३ पीढ़ी पहले के साक्ष्य लाकर दे, फिर राम के साक्ष्य की बात करे।

प्रश्न : सबका मंगल चाहनेवाले बापूजी ! परमात्मा क्या है ? यह समझाने की कृपा करें।

पूज्यश्री : भगवान की सत्ता, महत्ता और स्वरूप भगवान ही जानते हैं। उनका पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर भी शास्त्रों के आधार पर थोड़ा-बहुत वर्णन करके भगवत्कृपा से अपना चित्त भगवन्मय बनाया जाता है।

सारी चीजें उस परमात्मा में ही उत्पन्न होती हैं तथा वही सर्वरूप हो जाता है और सारी चीजों के मिटने के बाद भी वह तनिक भी नहीं बिगड़ता। जैसे - सोना या मिट्टी लें। सारे घड़े, सारे सकोरे, सारी सुराहियाँ, सारे खिलौने मिट्टी से ही पैदा होते हैं। वास्तव में मिट्टी घड़ा नहीं है किंतु मिट्टी के बिना घड़ा नहीं रह सकता। ऐसे ही उस परब्रह्म परमात्मा के बिना कोई चीज रह नहीं सकती, सारी चीजें उस परमात्म-चेतना में हैं और उसीमें लीन हो जाती हैं। □

अदित्यै रास्नासि। 'हे सुकर्मा ! तू मानव-जाति के उत्थान के लिए, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए सदा कटिबद्ध रह।' **(यजुर्वेद : १.३०)**

भीष्मजी ने पहचाना श्रीकृष्ण का नारायणस्वरूप, वासुदेवरूप, रामरूप, श्रीकृष्ण का तात्त्विक रूप, हरिरूप

(भीष्मपंचक व्रत : २१ से २४ नवम्बर)

पितामह भीष्म कहते हैं :

परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः ।
यद् वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन ॥

'मैं त्रिलोकी का राज्य छोड़ सकता हूँ, देवताओं का राज्य भी छोड़ सकता हूँ और इन दोनों से अधिक है उसे भी छोड़ सकता हूँ परंतु सत्य कभी नहीं छोड़ सकता ।'

(महाभारत, आदिपर्व : १०३.१५)

महाराज शान्तनु के औरस पुत्र और गंगादेवी के गर्भ से उत्पन्न पितामह भीष्म ज्ञानी, दृढ़ प्रतिज्ञ, धर्मविद्, सत्यवादी, विद्वान, राजनीतिज्ञ, उदार, जितेन्द्रिय तथा अप्रतिम योद्धा होने के साथ ही भगवान के अनन्य भक्त भी थे । राजनीतिज्ञ होते हुए भी सत्यवादी थे, ऐसा विलक्षण लक्षण ! राजनीतिज्ञ और सत्यवादी ! नेता बोलते हैं बिना झूठ के काम नहीं चलता । बिना सत्य चल सकता है काम ? श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान के रूप में भीष्मजी ने पहचाना था।

धर्मराज के राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर ने भीष्मजी से पूछा कि अग्रपूजा किसकी होनी चाहिए ? तब भीष्मजी ने स्पष्टरूप से कहा कि 'तेज, बल, पराक्रम तथा अन्य सभी गुणों में श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम पूजा पाने योग्य हैं ।'

महाभारत का युद्ध समाप्त हो जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर को अपने भाई-बंधुओं के मारे जाने का बड़ा शोक हो रहा था, तब ज्ञान की इच्छा से वे भाइयों एवं भगवान श्रीकृष्ण के साथ पितामह भीष्मजी के पास गये । बड़े विनय और प्रेम के साथ पाण्डवों ने पितामह भीष्म को प्रणाम किया ।

यदि मनुष्य में नीति, ब्रह्मचर्य और धर्म हो तो संसार के सगे-संबंधियों से मोह-ममता छूट सकती है । जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, उनकी आसक्ति परिवार पर अत्यधिक बढ़ जाती है और परमात्मप्राप्ति का सच्चा पुरुषार्थ कर नहीं पाते । इसका अर्थ यह नहीं है कि परिवार का तिरस्कार किया जाय । नहीं, समस्त जगत को परिवार समझकर सबके प्रति समभाव रखना चाहिए । भीष्मजी में ऐसा समभाव होने से वे श्रीकृष्ण का वास्तविक स्वरूप समझ सके थे ।

पितामह ने भगवान श्रीकृष्ण के संबंध में युधिष्ठिर आदि को कहा :

'श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान हैं । ये सबके आदि कारण और परम पुरुष नारायण हैं । अपनी माया से लोगों को मोहित करते हुए ये यदुवंशियों में छिपकर लीला कर रहे हैं । युधिष्ठिर ! इनका प्रभाव भगवान शंकर, देवर्षि नारद और स्वयं भगवान कपिल ही जानते हैं । जिन्हें तुम अपना ममेरा भाई, प्रिय मित्र और सबसे बड़ा हितैषी मानते हो तथा जिन्हें तुमने प्रेमवश अपना मंत्री, दूत और सारथि तक बनाने में संकोच नहीं किया, वे स्वयं परमात्मा हैं । सर्वत्र सम होने पर भी देखो तो सही, वे अपने अनन्य प्रेमी भक्तों पर कितनी कृपा करते हैं !

ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति । 'सत्य का आचरण पापों को नष्ट कर देता है ।' **(ऋग्वेद : ४.२३.८)**

यही कारण है कि ऐसे समय में, जबकि मैं अपने प्राणों का त्याग करने जा रहा हूँ, इन भगवान श्रीकृष्ण ने मुझे साक्षात् दर्शन दिये हैं ।'

तत्पश्चात् ब्रह्मचर्य, अनुभव, ज्ञान और भगवद्-भक्ति के प्रताप से अगाध ज्ञानी पितामह भीष्म ने दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म और भगवद्धर्म - इन सबका अलग-अलग, विस्तार से उपदेश किया और युधिष्ठिर के शोकसंतप्त हृदय को शांत कर दिया ।

इस प्रकार भगवान के सामने ऋषियों के समूह से घिरे हुए धर्मचर्चा करते हुए जब उत्तम उत्तरायण का समय आया, तब भीष्मजी मौन हो गये और उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों के वृत्ति-विलास को रोक दिया तथा बड़े प्रेम से भगवान की स्तुति की :

'मैं अपनी यह बुद्धि, जो अनेक प्रकार के साधनों का अनुष्ठान करने से अत्यंत शुद्ध एवं कामनारहित हो गयी है, यदुवंश-शिरोमणि, अनन्त भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित करता हूँ । जो सदा-सर्वदा अपने आनंदमय स्वरूप में स्थित रहते हुए ही कभी लीला करने की इच्छा से प्रकृति को स्वीकार कर लेते हैं, जिनसे यह सृष्टि-परंपरा चलती है, उन अर्जुन-सखा श्रीकृष्ण में मेरी निष्कपट प्रीति हो । अपने मित्र अर्जुन की बात सुनकर जो तुरंत ही पाण्डव-कौरव दोनों सेनाओं के बीच में अपना रथ ले आये और वहाँ स्थित होकर जिन्होंने अपनी दृष्टि से ही शत्रुपक्ष के वीरों की आयु हर ली, उन पार्थ-सखा श्रीकृष्ण में मेरा मन रमे । जब अर्जुन अपने स्वजनों के वध से विमुख हो गया, उस समय जिन्होंने गीता के रूप में आत्मविद्या का उपदेश करके उसके सामयिक अज्ञान का नाश कर दिया, उन परम पुरुष भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में मेरी प्रीति बनी रहे । मुझ आततायी ने तीखे बाण मार-मारकर उनके शरीर का कवच तोड़ डाला था, जिससे उनका श्यामसुंदर शरीर लहूलुहान हो रहा था । अर्जुन के रोकने पर भी वे बलपूर्वक मुझे मारने के लिए मेरी ओर दौड़े आ रहे थे । वे ही भगवान श्रीकृष्ण, जो ऐसा करते हुए भी मेरे प्रति अनुग्रह और भक्तवत्सलता से परिपूर्ण थे, मेरे एकमात्र आश्रय हैं । जिस समय राजसूय यज्ञ हो रहा था, मुनियों और बड़े-बड़े राजाओं से भरी सभा में जिनकी प्रथम पूजा हुई थी, वे ही सबके आत्मा प्रभु आज इस मृत्यु के समय मेरे सामने खड़े हैं । अहोभाग्य ! मैं कृतार्थ हो गया !! जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखों से अनेक रूपों में दिखते हैं, वैसे ही अजन्मा भगवान श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रचित अनेक शरीरधारियों के हृदय में विराजमान हैं ही, उन भगवान श्रीकृष्ण को मैं भेद-भ्रम से रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ ।'

१३५ वर्ष की अवस्था में भीष्म पितामह ने उत्तरायण काल में ब्रह्मवेत्ता ऋषि-मुनियों के बीच इस प्रकार साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की ।

कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ॥

भीष्म पितामह ने मन, वाणी और दृष्टि की वृत्तियों से आत्मस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण में अपने-आपको लीन कर दिया । उनके प्राण वहीं विलीन हो गये और वे शांत हो गये ।

(श्रीमद्भागवत : १.९.४३)

भीष्मपंचक व्रत

कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूनम तक का व्रत 'भीष्मपंचक व्रत' कहलाता है । जो इस व्रत का

विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीः ।
'हे देव ! संघर्षकाल में भी हमारी बुद्धि को व्यवस्थित रखिये ।' (ऋग्वेद : ७.६७.५)

पालन करता है, उसके द्वारा सब प्रकार के शुभ कृत्यों का पालन हो जाता है। यह महापुण्यमय व्रत महापातकों का नाश करनेवाला है। निःसंतान व्यक्ति पत्नीसहित इस प्रकार का व्रत करे तो उसे संतान की प्राप्ति होती है।

कार्तिक एकादशी के दिन बाणों की शय्या पर पड़े हुए भीष्मजी ने जल की याचना की थी। तब अर्जुन ने संकल्प कर भूमि पर बाण मारा तो गंगाजी की धार निकली और भीष्मजी के मुँह में आयी। उनकी प्यास मिटी और तन-मन-प्राण संतुष्ट हुए। इसलिए इस दिन को भगवान श्रीकृष्ण ने पर्व के रूप में घोषित करते हुए कहा कि 'आज से लेकर पूर्णिमा तक जो अर्घ्यदान से भीष्मजी को तृप्त करेगा और इस भीष्मपंचक व्रत का पालन करेगा, उस पर मेरी सहज प्रसन्नता होगी।'

इन पाँच दिनों में निम्न मंत्र से भीष्मजी के लिए तर्पण करना चाहिए :

सत्यव्रताय शुचये गांगेयाय महात्मने ।
भीष्मायैतद् ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥

'आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले परम पवित्र, सत्य-व्रतपरायण गंगानंदन महात्मा भीष्म को मैं यह अर्घ्य देता हूँ।'

(स्कंद पुराण, वैष्णव खंड, कार्तिक माहात्म्य)

अर्घ्य के जल में थोड़ा-सा कुमकुम, केवड़ा, पुष्प और पंचामृत (गाय का दूध, दही, घी, शहद और शक्कर) मिला हो तो अच्छा है, नहीं तो जैसे भी दे सकें। 'मेरा ब्रह्मचर्य दृढ़ रहे, संयम दृढ़ रहे, मैं कामविकार से बचूँ...' - ऐसी प्रार्थना करें।

इन पाँच दिनों में अन्न का त्याग करें। कंदमूल, फल, दूध अथवा हविष्य (विहित सात्त्विक आहार जो यज्ञ के दिनों में किया जाता है) लें। जो अपना प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं, वैकुण्ठ चाहते हैं या इस लोक में सुख चाहते हैं उन्हें यह व्रत करने की सलाह दी गयी है। इन दिनों में पंचगव्य (गाय का दूध, दही, घी, गोझरण व गोबर-रस का मिश्रण) का सेवन लाभदायी है। पानी में थोड़ा-सा गोझरण डालकर स्नान करें तो वह रोग-दोषनाशक तथा पापनाशक माना जाता है। इन दिनों में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

जो नीचे लिखे मंत्र से भीष्मजी के लिए अर्घ्यदान करता है, वह मोक्ष का भागी होता है :

वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृतप्रवराय च ।
अपुत्राय ददाम्येतदुदकं भीष्मवर्मणे ॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥

'जिनका व्याघ्रपद गोत्र और सांकृत प्रवर है, उन पुत्ररहित भीष्मवर्मा को मैं यह जल देता हूँ। वसुओं के अवतार, शान्तनु के पुत्र, आजन्म ब्रह्मचारी भीष्म को मैं अर्घ्य देता हूँ।'

(स्कंद पुराण, वैष्णव खंड, कार्तिक माहात्म्य)

इस व्रत का प्रथम दिन देवउठी एकादशी है। इस दिन भगवान नारायण जागते हैं। इस कारण इस दिन निम्न मंत्र का उच्चारण करके भगवान को जगाना चाहिए :

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज ।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यमंगलं कुरु ॥

'हे गोविंद ! उठिये, उठिये, हे गरुड़ध्वज ! उठिये, हे कमलाकान्त ! निद्रा का त्याग कर तीनों लोकों का मंगल कीजिये।' ❐

सत्संग से मनुष्य को साधना प्राप्त होती है, चाहे वह शांति के रूप में हो चाहे मुक्ति के रूप में, चाहे सेवा के रूप में हो, प्रेम के रूप में हो चाहे त्याग के रूप में हो। ('जीवन रसायन' पुस्तक से)

जीवं व्रातँ सचेमहि। 'हम लोग ज्ञान-साधनयुक्त श्रेष्ठ जीवन और सत्यभाषण आदि व्रतों को भलीप्रकार प्राप्त करें।' **(यजुर्वेद : ३.५५)**

हर्ष की सरिता बहाओ या विरह-अग्नि जलाओ

आपके दोनों हाथों में लड्डू !

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

आपके पास दो बड़ी भारी योग्यताएँ हैं। एक योग्यता है हर्ष और दूसरी है विषाद (विरह-अग्नि)। मन-ही-मन गुरुदेव को स्नेह करते-करते, गुरुदेव से बात करते-करते हृदय पुलकित होता है, हर्षित होता है तो गुरुतत्त्व से जो प्रेरणा होती है उससे गजब का लाभ होता है। हमने तो गुरुदेव को स्नेह करते हुए बहुत कुछ पाया। हर्ष की सरिता बहाकर अपने कर्मों को और पाप-ताप को, अज्ञान को बहा दो अथवा तो क़भी-कभी विरह की अग्नि जलाकर अपने जीवत्व को अथवा अपने संस्कारों को जल जाने दो। विरह-अग्नि से भी आपके पुराने संस्कार जलते जायेंगे, सिंकते जायेंगे। सिंकते जायेंगे मतलब, जैसे मूँगफली सेंक दी, अब वह मूँगफली खा सकते हो, देख सकते हो, बेच सकते हो किंतु उसको बो के उसकी परम्परा नहीं बढ़ा सकते।

ऐसे ही आपके जो भी जन्म-जन्मान्तर के संस्कार हैं वे अगर विरह-अग्नि में सेंक लिये जायें तो वे संस्कार फिर सत्यबुद्धि से आपके पास रहेंगे नहीं और दूसरे जन्मों का कारण नहीं बनेंगे।

जैसे सेंका हुआ अनाज नहीं उगता है, ऐसे ही विरह-अग्नि में सेंका हुआ चित्त, उसके अंदर पड़े हुए संस्कार जन्मों का क़ारण नहीं बनते हैं। भगवत्तत्त्व में स्थिति करने से, गुरु में स्थिति करने से अंतःकरण सिंक जायेगा, विरह-अग्नि में बाधित हो जायेगा।

श्रीकृष्ण को पाँच हजार से भी अधिक वर्ष बीत गये लेकिन मीराबाई इतनी तदाकार होती कि हजारों वर्षों की दूरी मीराबाई के आगे नहीं रहती। मीराबाई के आगे तो श्रीकृष्ण नाच रहे हैं, बंसी बजा रहे हैं, अभी भोजन कर रहे हैं, अर्जुन को 'गीता' सुना रहे हैं। श्रीकृष्ण आये तो मीराबाई हर्षित हो जाती है और आ नहीं रहे हैं तो मीराबाई सोचती है : 'क्या कारण है ?' मीराबाई रोने लगती है। रोना विरह-भक्ति है। मीराबाई का कभी तो प्रसन्नता से मुखड़ा खिलता है तो कभी विरह-अग्नि से हृदय शुद्ध होता है।

ईश्वर की स्थिति में, गुरु की स्थिति में अगर स्थिति हो गयी है तो भगवान को, गुरुदेव को प्रेम करते-करते, नहीं तो विरह-अग्नि में अपने दोषों को जलाकर हृदय शुद्ध करो। हर्ष की सरिता बहाओ या शांत होकर वास्तविक तत्त्व में आओ। फिर चुप... मन इधर-उधर जाय तो 'ॐ' का गुंजन फिर शांत... शांति, आनंद रस से जगमगाते रहो। **'वासुदेवः सर्वमिति'** सब वासुदेव हैं। संकल्परहित... ब्राह्मी स्थिति... ❑

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्। यस्त्वै वं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे ॥

'ब्रह्मज्ञान प्रकट करनेवाले देवों ने आदि में कहा है कि जो ज्ञानी ज्ञान से ब्रह्म को जानता है, उसके वश में सब देव और समस्त इन्द्रियाँ रहती हैं।' (यजुर्वेद : ३१.२१)

असली रस को पा लो

- पूज्य बापूजी

यह एकदम पक्की बात है कि जब तक सच्चा सुख नहीं मिलता तब तक कच्चे सुख का आकर्षण नहीं जाता। कुछ लोग बोलते रहते हैं : 'यह छोड़ दो, वह छोड़ दो...' पर पहले कुछ बढ़िया, रसमय पकड़ाओगे तब तो छोड़ेगा।

दो प्रकार की माताएँ होती हैं। पहले प्रकार की माँ खिलौना चूसनेवाले अपने बच्चे को डराती-धमकाती है कि 'ऐऽऽऽ ! यह सच्चा आम नहीं है, मिट्टी का आम है। इसे चूसेगा तो पथरी हो जायेगी। छोड़ दे, नहीं तो मारूँगी।' बच्चा वह खिलौने का आम छोड़ देता है। उसने खिलौना डंडे से त्यागा, उसे उसके प्रति वैराग्य नहीं हुआ इसलिए वह फिर दूसरे खिलौने पकड़कर चूसने लगता है।

दूसरे प्रकार की माँ बच्चे को प्रेम से कहती है : 'मेरे लाल ! यह आम नहीं है, यह तो खिलौना है। ठहर, मैं तुझे असली आम चखा देती हूँ।' वह आम ले आती है और उसे दो बूँद रस का चस्का लगा देती है। अब वह अपने-आप चूसेगा क्योंकि उसे रस मिलेगा। वह आम चूसने का गुरु खुद ही बन जायेगा, फिर सिखाना नहीं पड़ेगा।

ऐसे ही गुरु दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के गुरु सिर्फ समझाते रहते हैं : 'ऐसा न करो, वैसा न करो... पाप होगा, नरक मिलेगा, यह होगा...।' फिर सामनेवाला चाय छोड़ के कॉफी पीता है, कॉफी छोड़ के पेप्सी पीता है और पेप्सी छोड़ के दूसरा कुछ पीता है। उसको तो सुख चाहिए न !

दूसरे ऐसे गुरु होते हैं, जो बोलते हैं : 'भैया ! आ जाना 'ध्यान योग शिविर' में।' और निगाहों के द्वारा, संकल्प के द्वारा उसके अंदर थोड़ी-सी अपनी शक्तिपात की किरण भेज देते हैं। बस मन को सच्चे सुख का चस्का लग गया तो अपने आप उस परम सुख की प्राप्ति के मार्ग पर चल पड़ता है।

आपका समय कीमती है। नकली सुख से आप-हम वहीं पहुँच जायेंगे जहाँ और सब खत्म हो गये। जहाँ और लोग गये वहीं हम गुल हो जायेंगे, छू हो जायेंगे देर-सवेर।

'टाइम इज मनी।' यह अंग्रेजों की कहावत है और मूर्ख हिन्दू उनका यह वमन दोहराते रहते हैं। अरे मूर्ख ! 'टाइम' देकर तुम 'मनी' कमा सकते हो, 'ज्वेलरी' कमा सकते हो, यश कमा सकते हो, सब कुछ कमा सकते हो परंतु कमाया हुआ सब कुछ देकर क्या तुम आयुष्य का 'टाइम' फिर से ला सकते हो ? 'टाइम' 'मनी' नहीं है, 'मनी' से कीमती है। समय पैसों से कीमती है। समय देकर तुम पैसे कमा सकते हो, खोयी हुई इज्जत ला सकते हो, खोया हुआ स्वास्थ्य भी ला सकते हो किंतु खोया हुआ समय फिर नहीं ला सकते। 'टाइम इज मनी'- यह बहुत छोटी बात है। वास्तव में समय सबसे ज्यादा कीमती

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्।

'जिस पर सुखसहित अनुगमन किया जा सकता है और जहाँ पाप या अपराधरूपी बाधाओं का भय नहीं है, ऐसे पथ पर चलकर हम उन्नति को प्राप्त करें।' **(यजुर्वेद : ४.२९)**

है। आपने इतने वर्ष देकर जो विद्वत्ता के प्रमाणपत्र अथवा धन या और कुछ पाया वह सब-का-सब देकर आपका दिया समय अब वापस आ सकता है क्या ? उतना आयुष्य बढ़ सकता है क्या ? इसलिए कीमती समय को कीमती-से-कीमती आत्मा को खोजने में और आत्मा का रस पाने में लगाना चाहिए।

चपरासी ८ घंटे काम करता है तो उसको वेतन मिलता है थोड़ा-सा तथा पायलट कुछ ही घंटे काम करता है और पगार मिलता है चपरासी से कई गुना ज्यादा। जितने अधिक कीमती काम में समय लगाते हैं उतना ही अधिक फल मिलता है।

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

भगवान के होकर भगवान के नाम का जप करो। शब्दों में बहुत बड़ी शक्ति है। शब्द अगर मंत्र हैं और उनमें भगवान का नाम तथा ॐकार है तो आप सीधे ईश्वरीय सत्ता से जुड़ने में सक्षम बन जाते हैं। यदि जीव भगवन्नामरहित मंत्र का जप करता है तो उसकी श्रद्धा के बल से ही फल पायेगा परंतु मंत्र में यदि ईश्वर का नाम है और ईश्वर की प्रीति के लिए जप करता है तो ईश्वरीय बल उसको मददरूप हो जाता है। इसलिए विषय-विकारों में तथा बाहर के आकर्षणों में ले जानेवाले जो चलचित्र और अखबार हैं, उनसे बचकर आप ईश्वर के होकर ईश्वर का भजन करो। मैं तो कहता हूँ कि आप केवल ४० दिन के दो अनुष्ठान कर लो; आपके जीवन में बरकत आ जायेगी, चमत्कारिक बरकत आ जायेगी। मैंने किये हैं। एक बार ४० दिन का कायाकल्प किया था। उसमें केवल दूध पर रहकर ध्यान-भजन करता था, किसीसे मिलता नहीं था। दूसरी बार भी ऐसा ही किया। इससे बहुत लाभ होता है।

आप चाहते हैं सुख और शांति। देख के सुखी, सूँघ के सुखी, विषय-सुख भोग के सुखी, बच्चा ले के सुखी... ये अस्थायी सुख हैं, इनके अंत में नश्वरता है और सच्चा है आत्मा, जो शरीर के मरने के बाद भी नहीं मरता; बस उधर को मन जाय। एक बार आपने उसे पा लिया तो फिर बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग आपके दर्शन और आशीर्वाद पाने के लिए आयेंगे लेकिन देवता भी आ जायें तो आपको क्या ? इन्द्र भी आ जाय तो आपको अहंकार नहीं होगा और कोई दुत्कारे तो आपको अंदर दुःख नहीं होगा। आप जानते होंगे कि सब सपना है, खेल है।

यत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्राद्याः सर्वदेवताः।
अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति॥

'जिस पद की इच्छा करते हुए इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता दीन हो रहे हैं, उस पर स्थित हुआ भी योगी हर्ष को प्राप्त नहीं होता - यही आश्चर्य है।'

(अष्टावक्र गीता : ४.२)

ऐसा पद पाकर योगी अहंकार नहीं करता है। क्या आश्चर्य है ! ऐसा आत्मपद मनुष्य-योनि में पा सकते हैं। देव-योनि में तो भोग की प्रधानता होती है। असुर-योनि में तो असुरत्व की प्रधानता होती है। नरकों में कष्ट की प्रधानता होती है। यहाँ तो कर्म की प्रधानता है, विवेक की प्रधानता है। मनुष्य-जीवन **'मोच्छ कर द्वारा'** - मोक्ष का द्वार है। मोक्ष का मतलब क्या ?

जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्। मनो दग्धं परस्त्रीभिः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्॥

'दूसरे का अन्न खाने से जिसकी जीभ जल चुकी है, दूसरे से दान लेने से जिसके हाथ जल चुके हैं और दूसरे की स्त्री का चिन्तन करने से जिसका मन जल चुका है, उसे (जप, तप आदि करने से) सिद्धि कैसे मिल सकती है ?'

(कुलार्णव तंत्र : १५.७७)

सब दुःखों से, सब बंधनों से सदा के लिए मुक्ति और परमानंद की प्राप्ति। आप मर गये और प्रकृति ने आपको घोड़ा बना दिया, गधा बना दिया तो आप बंधन में हैं। आपकी नहीं चलती। मरने के बाद कर्मों के अनुसार, वासना के अनुसार भटकना पड़ता है, प्रकृति भटकाती है तो आप बंधन में हैं। मोक्ष का मतलब है कि आपके ऊपर किसीका दबाव न रहे, प्रभाव न रहे; आप मुक्तात्मा हो गये, अपने-आपमें तृप्त हो गये। कुछ पाकर जो सुखी होना चाहता है, वह कंगाल है, भिखमंगा है। कुछ छोड़कर सुख चाहता है, कहीं जाकर सुख चाहता है, किसीसे मिलकर सुख चाहता है तो यह तो बेचारा जीव कंगालियत भोग रहा है। अपने-आपमें तृप्त होना बहुत ऊँची बात है। यह आत्मानुभव-संपन्न महापुरुषों के संपर्क से होता है, विद्वत्ता से भी नहीं होता और मूर्खता से भी नहीं होता। विद्वत्ता है और यह पद नहीं पाया तो विद्वत्ता से क्या मिला ? रोटी कमा के खायी और क्या हुआ ? और पा लिया तो फिर किस चीज की जरूरत है ?

आद्य शंकराचार्यजी ने कहा :

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।
विदुषामिह वैदुष्यं भुक्तये न तु मुक्तये॥

अगर आत्मविश्रांति नहीं पायी तो विद्वत्ता किस काम आयी ? पेट भरने के लिए ?

सा विद्या या विमुक्तये।

विद्या वही है जो मुक्त कर दे। अगर आपने वह आत्मविद्या पा ली तो फिर आप बंधनों से मुक्त हो गये, विकारों से मुक्त हो गये, परेशानियों से मुक्त हो गये। □

मनुष्य का सहायक कौन ?

एक बार कुरुक्षेत्र में भगवान वेदव्यासजी और ऋषियों के बीच ज्ञानचर्चा चल रही थी।

मुनियों ने व्यासजी से कहा : ''हे सकल शास्त्रविशारद भगवन्! मनुष्य का कौन सहायक होता है- पिता, माता, पुत्र, बंधुवर्ग या मित्रवर्ग ? मनुष्य लकड़ी तथा ढेले के समान घर एवं शरीर को छोड़कर चले जाते हैं। मरने पर कौन उनका अनुगमन करता है ?''

भगवान व्यासजी ने कहा : ''विप्रवृंद! मनुष्य अकेला जन्म लेता है, अकेला मरता है, अकेला कठिनाइयों को पार करता है और अकेला दुर्गति प्राप्त करता है। पिता, माता, भाई, पुत्र, बंधुवर्ग तथा मित्रवर्ग- कोई उसका साथ नहीं देता है। लोग लकड़ी-ढेले के समान उस मृत शरीर को त्याग दो घड़ी रो-धोकर निवृत्त हो जाते हैं। फिर उस जीव का अनुगमन एक धर्म ही करता है। इसलिए मनुष्यों को अपने सहायक धर्म की सदा सेवा करनी चाहिए।

पापी मनुष्य नरक में जाता है, अतः पण्डितजन को चाहिए कि वे अधर्मों से प्राप्त धन में अनुरक्त न हों। मनुष्यों का एक धर्म ही सहायक माना गया है। बहुश्रुत मनुष्य भी लोभ, मोह, दया

तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्री गुरोर्मुखात्। सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात्॥

'श्री गुरुदेव के मुख से प्राप्त ज्ञान के द्वारा आत्मतत्त्व को जानना चाहिए। ऐसा करने से जीव इस घोर संसार के बंधन से सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है।' (गरुड़ पुराण : ४९.१०१)

या भय से अकार्य कर बैठते हैं। धर्म, अर्थ और काम इनकी प्राप्ति अधर्मपूर्वक नहीं करनी चाहिए।

विप्रगण ! इस लोक में जो प्राणी जन्म से लेकर पुण्य करता है वह धर्म का फल भोगता है। यदि वह जन्म से लेकर धर्म की सेवा करता है तो वह पुरुष होकर नित्य सुख प्राप्त करता है। यदि बीच-बीच में वह धर्म-अधर्म दोनों करता है तो सुख के बाद दुःख भी प्राप्त करता है। अधर्म करने पर वह यमलोक जाता है। फिर घोर दुःख पाकर पक्षी-योनि में जाता है। जिस-जिस कर्म के करने से मोहबद्ध जीव जिस-जिस योनि में उत्पन्न होता है, वह मुझसे सुनिये।

जो मूर्ख शिष्य अपने अध्यापक के प्रति पापाचरण करता है, वह इस संसार में निःसंदेह तीन योनियों में जाता है। पहले वह कुत्ता होता है तदनन्तर राक्षस और तदनन्तर गधा। फिर मरने पर अनेकविध कष्टों को सहने के पश्चात् वह ब्राह्मण होता है।

विप्रवृंद ! जो पुत्र माता-पिता की अवहेलना करता है, वह भी मरने पर गधा होता है। गर्दभ-योनि में वह दस वर्षों तक रहता है। फिर एक वर्ष मगर होकर रहता है। तदनन्तर मनुष्य-योनि में उत्पन्न होता है।

पुत्रस्य मातापितरौ यस्य रुष्टावुभावपि ।
गुर्वपध्यानतः सोऽपि मृतो जायेत गर्दभः ॥

'जिस पुत्र के ऊपर माता, पिता तथा गुरु रुष्ट रहते हैं, वह मरने पर गधा होता है।'

(ब्रह्म पुराण : २१७.५१)

तदनन्तर चौबीस मास तक गधा और सात मास तक बिलार होकर फिर मनुष्य होता है। माता-पिता की निन्दा करनेवाला मनुष्य सारीक पक्षी होता है और उनकी ताड़ना करनेवाला कछुआ होता है। कच्छप-योनि में दस वर्षों तक रहकर साही होता है। फिर छः महीनों तक साँप होकर बाद में मनुष्य होता है। स्वामी के अन्न को खाकर उसके शत्रुओं की सेवा करनेवाला मोहयुक्त मनुष्य मरने पर बन्दर होता है। दस वर्षों तक बन्दर, सात वर्षों तक चूहा और छः मास तक कुत्ता रहकर वह मनुष्य होता है।

निन्दक मनुष्य मरने पर शाङ्र्गक (सींगवाला जीव) होता है। विश्वासघाती, दुष्टबुद्धि मनुष्य मछली होता है। आठ वर्षों तक मछली रहकर हरिण होता है, चार महीनों तक हरिण रहकर बकरा होता है। एक वर्ष तक उस योनि में रहकर कीड़ा होता है। तदनन्तर मनुष्य होता है।

जो पिता के समान ज्येष्ठ भाई का अपमान करता है, वह भी मरने पर कराँकुल (कूँज) पक्षी होता है। दस वर्षों तक कराँकुल होकर फिर चकोर होता है। तदनन्तर मनुष्य-योनि में आता है।

जो नर पाप करता है तथा व्रतों से विमुख रहता है, वह सुख-दुःखों का भोग करते हुए रोगी होता है। लोभ-मोह से युक्त तथा पापाचरण करनेवाले मनुष्य मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले म्लेच्छ होते हैं।

मुनिश्रेष्ठो ! इसे सुनकर आप लोग धर्म में मन को लगायें।'' **('ब्रह्म पुराण' से)** ❑

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) 'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

अभिवादन का महत्त्व

अभिवादन सदाचार का मुख्य अंग है, उत्तम गुण है। इसमें नम्रता, आदर, श्रद्धा, सेवा एवं शरणागति का भाव अनुस्यूत रहता है। बड़े आदर के साथ एवं मन से श्रेष्ठजनों को प्रणाम करना चाहिए। बचपन से ही बच्चों में यह सुसंस्कार डालना चाहिए। भारतीय संस्कृति में अभिवादन को मात्र औपचारिकता न मानकर एक धर्मानुष्ठान माना गया है।

मनु महाराज ने कहा :

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

'वृद्ध लोगों के आने पर युवा पुरुष के प्राण ऊपर चढ़ते हैं और जब वह उठकर प्रणाम करता है तो पुनः प्राणों को पूर्ववत् स्थिति में प्राप्त कर लेता है। नित्य वृद्धजनों को प्रणाम करने से तथा उनकी सेवा करने से मनुष्य की आयु, बुद्धि, यश और बल- ये चारों बढ़ते हैं।' (२.१२०-१२१)

साष्टांग प्रणाम के विषय में 'आह्निक सूत्रावलि' नामक ग्रंथ में आता है :

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा।
पदाभ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते ॥

'छाती, सिर, नेत्र, मन, वचन, हाथ, पाँव और घुटने - इन आठ अंगों द्वारा किये गये प्रणाम को साष्टांग प्रणाम कहते हैं।'

साष्टांग प्रणाम करने पर शरीर के सभी अंग पूर्णरूप से झुक जाते हैं और हम स्वयं को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर देते हैं। परमेश्वर के प्रति आभार व्यक्त करने का यह उत्तम तरीका है। साष्टांग प्रणाम करने से अहंकार आदि मनोमालिन्य दूर होता है।

'पैठीनसि कुल्लूकभट्टीय' ग्रंथ के अनुसार :

उत्तानाभ्यां हस्ताभ्यां दक्षिणेन दक्षिणं
सव्यं सव्येन पादावभिवादयेत्।

'अपने दोनों हाथों को ऊपर की ओर सीधे रखते हुए दायें हाथ से दायें चरण तथा बायें हाथ से बायें चरण का स्पर्शपूर्वक अभिवादन करना चाहिए।'

जब श्रेष्ठ व पूजनीय व्यक्ति चरणस्पर्श करनेवाले व्यक्ति के सिर, कंधों अथवा पीठ पर अपना हाथ रखते हैं तो इस स्थिति में दोनों शरीरों में बहनेवाली विद्युत का एक आवर्त्त (वलय) बन जाता है। इस क्रिया से श्रेष्ठ व्यक्ति के गुण और ओज का प्रवाह दूसरे व्यक्ति में भी प्रवाहित होने लगता है।

दीवाली के दिनों में माता-पिता व श्रेष्ठजनों को प्रणाम करके इसका फायदा लेना चाहिए। जो महापुरुष प्रणाम या चरणस्पर्श नहीं करने देते उन्हें, दूर से ही खड़े होकर अहोभाव से सिर झुकाना चाहिए तो उनकी दृष्टि व शुभ संकल्प से लाभ होता है। ❑

पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः। बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेच्च न तु राज्ये खलैः सह ॥

'पंडित, विनीत, धर्मज्ञ एवं सत्यवादी जनों के साथ बंधन में रहना भी श्रेयस्कर है किंतु दुष्टों के साथ राज्य का उपभोग करना भी उचित नहीं है।'

(गरुड़ पुराण : ११३.३)

महालक्ष्मी की प्रसन्नता की कुंजी

कुबेर ने भगवती महालक्ष्मी के जिस मंत्र से उनकी उपासना करके परम ऐश्वर्य प्राप्त किया, उसी मंत्र के प्रभाव से दक्षसावर्णि मनु को बहुत ऊँचा पद मिला तथा राजा मंगल और प्रियव्रत को भी अथाह संपदा, सामर्थ्य एवं यश प्राप्त हुआ । ध्रुव के पिता राजा उत्तानपाद और राजा केदार को भी उसी मंत्र से अखंड संपदा मिली । उस मंत्र को यदि कोई नरक चतुर्दशी की रात्रि में जपता है तो लक्ष्मीजी उस पर प्रसन्न होती हैं । इससे जापक के हृदय में जो ऐश्वर्य-सामर्थ्य लाने की योग्यता का केन्द्र है, वह विकसित होता है । मंत्र है :

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा ।

कुछ मंत्र ऐसे होते हैं जिनका अर्थ समझ में नहीं आता किंतु उनके उच्चारण से शरीर के सूक्ष्म केन्द्र प्रभावित होकर ब्रह्माण्ड के अंदर जो अथाह रहस्य छुपे हैं उनसे तादात्म्य कर पाते हैं ।

जिनके पास विवेक है वे **ॐ नमो भाग्यलक्ष्म्यै च विद्महे । अष्टलक्ष्म्यै च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥** या **श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा ।** का जप करके बाहर की लक्ष्मी नहीं चाहते । वे तो केवल परमात्मा को चाहते हैं ।

तुम भी लक्ष्मीदेवी से प्रार्थना करो कि 'माँ ! जो आपको प्रिय है वही मुझे प्रिय हो ।' और लक्ष्मीजी को तो भगवान नारायण ही प्रिय हैं । जब वे परमात्मा तुम्हारे प्रिय हो जायेंगे तो लक्ष्मी माता तो तुम पर प्रसन्न रहेंगी ही । □

मंगलमय दीवाली

उत्साह उमंग अपार लिये,
जगमग दीपों की कतार लिये,
सुख चैन अमन उपहार लिये,
आयी पावन, मंगलमय दीवाली ।

उज्ज्वल स्वच्छ हो घर आँगन,
हरिरस से महके चित्त चमन,
सुमधुर सात्त्विक निर्मल जीवन,
गली, गाँव, नगर की छटा निराली ।

प्रभुप्रीति का नव परिधान,
स्व स्वरूप का हो निज भान,
जगे चित्त चेतना हो गुरु ज्ञान,
मन मधुमय विकारों से खाली ।

परम ज्ञान की मधुर मिठाई,
परहित तन हो सर्व की भलाई,
सद्गुरु नाम सदा सुखदाई,
हरिरस से छलकी दिल की प्याली ।

समता स्नेह से सजी रंगोली,
सद्गुण से महकी चित्त चोली,
साक्षी भाव साथी हमजोली,
प्रभु जग बगिया का माली ।

फूटे पटाखे राग-द्वेष के,
भस्म हो भाव क्रोध-आवेश के,
भेद भरम भय रोष दोष के,
घर घर में छाये खुशहाली ।

हर दिल में हो रामराज्य,
मिट जाये भय शोक विषाद,
स्नेह से उर अंतर आबाद,
आयी गुरुज्ञान की दीवाली ।

– जानकी ए. चंदनानी

सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि । सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥

'समस्त पुण्यों, श्रेय के सम्पूर्ण साधनों और समस्त यज्ञों में जपयज्ञ को ही सर्वोत्तम माना गया है ।'

(स्कंद पुराण, ब्रा. ब्रह्मो. : १.७)

'गुरमुखि नामु जपहु मन मेरे'

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक होता है मंत्रजप और दूसरा होता है नामजप । मंत्रजप जापक के बलबूते पर होता है, विधि-विधान की आवश्यकता रखता है किंतु भगवान के नामजप में जापक का अपना भाव होता है और बल भगवान का होता है । गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं :

गुरमुखि नामु जपहु मन मेरे ।
नानक पावहु सूख घनेरे ॥

गुरु से दीक्षा ले के, गुरुमुख होकर भगवन्नाम जपें । आदमी मनमुख होकर नाम जपता है तो मनचाही वस्तु पाकर नाम के धन को खो देता है किंतु गुरुमुख होकर नाम जपता है तो मनचाही वस्तु नहीं, प्रभुचाही वस्तु चाहता है । प्रभुचाही वस्तु तो परमानंद है, गुरुचाही वस्तु तो परमानंद है ! जहाँ संसार का सुख तो क्या महत्त्व रखे, इंद्र का सुख भी महत्त्व नहीं रखता, ऐसा परम सुख, परमात्मसुख उसे मिलता है ।

जह मात पिता सुत मीत न भाई ।

जहाँ माता-पिता, पुत्र, मित्र, भाई, कुटुम्बी, सगे-संबंधी और पैसा नहीं चलते, सब यहीं पड़े रह जाते हैं ।

मन ऊहा नामु तेरै संगि सहाई ।

हे मन ! वहाँ भगवान का नाम तेरे संग चलेगा, तेरी सहाय करेगा ।

जह महा भइआन दूत जम दलै ।
तह केवल नामु संगि तेरै चलै ।
जह मुसकल होवै अति भारी ।
हरि को नामु खिन माहि उधारी ।
अनिक पुनहचरन करत नही तरै ।
हरि को नामु कोटि पाप परहरै ॥
गुरमुखि नामु जपहु मन मेरे ।
नानक पावहु सूख घनेरे ॥

'मृत्यु के मार्ग में यहाँ महाभयानक यमदूतों के समूह होंगे, वहाँ हे भाई ! केवल हरिनाम तेरे साथ चलेगा । जहाँ तुझे बहुत भारी कठिनाई होगी, हरि का नाम एक क्षण में बचा लेगा । अनेक धार्मिक रस्में करके भी मनुष्य पापों से नहीं बचता पर प्रभु का नाम करोड़ों पापों का नाश कर देता है । हे मेरे मन ! गुरु द्वारा भगवन्नाम की दीक्षा लेकर, गुरुमुख हो के उसका जप कर, तू बहुत सुख पायेगा ।'

(सुखमनी साहिब)

भगवन्नाम अपने-आपमें प्रभाव रखता है । भाट के राजा रामचंद ग्वालियर की राजगद्दी पर थे तब की बात है । ग्वालियर के पास एक देहात में ताना नाम का एक १० वर्ष का बालक रहता था। वह अपने बगीचे की चौकीदारी करने के लिए पशुओं की आवाज निकाला करता ।

एक बार संत हरिदासजी कुछ भक्तों व अन्य यात्रियों के साथ वहाँ से गुजर रहे थे । तभी ताना ने शेर की गर्जना की तो यात्री और भक्त भागने लगे पर संत हरिदासजी डरे नहीं। शेर जिसकी सत्ता से दहाड़ता है उस सत्ता का अनुभव करनेवाले

जपेन पापं शमयेदशेषं यत्तत्कृतं जन्मपरम्परासु । जपेन भोगान् जयते च मृत्युं जपेन सिद्धिं लभते च मुक्तिम् ॥

'भगवन्नाम-जप के द्वारा अनेक जन्म-परम्पराओं के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं । जप से सभी प्रकार के सुखभोगों की प्राप्ति होती है तथा जप के द्वारा मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है ।' **(लिंग पुराण : ८५.१२५)**

संत थे तो डरेंगे क्यों ? उन्होंने सोचा, 'इस शांत इलाके में एक छोटे-से बगीचे में शेर का होना संभव नहीं है लेकिन आवाज शेर की आयी इसमें दो राय नहीं है ।' जहाँ से आवाज आयी उधर खोजा तो एक लड़का छुपकर खड़ा था ।

हरिदासजी ने पूछा : "तूने शेर की आवाज की ?"

"हाँ महाराज ! मैं ऐसी आवाज करता हूँ तो घंटों मेरे बगीचे में कोई नहीं घुसता । मैं बहुत सारे पशु-पक्षियों की आवाज निकालना जानता हूँ ।"

"सुना तो !"

भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों की बोली सुनकर हरिदासजी प्रसन्न हुए । उन्होंने उसके पिता को कहा कि इसे मुझे सौंप दो, चमक जायेगा । पिता संतप्रेमी था, बेटा दे दिया ।

संत उसे वृंदावन ले गये जहाँ उनका आश्रम था । कई वर्षों तक शब्दब्रह्म की उपासना करायी। एक दिन ताना ने कहा : "गुरुजी ! मैं एकान्त में बैठा था । वहाँ पक्षी किलोल कर रहे थे तो उनके मुख से, चोंचों से ज्वाला की किरणें-सी निकल रही थीं ।"

"बेटा ! पाँच भूत अरस-परस मिले-मिलाये हैं, इसलिए।"

जिनके घर में ए.सी. है उन लोगों को पता होगा कि ए.सी. हवा फेंकता है तो पानी अलग हो जाता है । हवा में पानी वाष्प के रूप में घूम रहा है । ऐसे ही अग्नितत्त्व, वायुतत्त्व, पृथ्वीतत्त्व सब एक-दूसरे से मिले हैं ।

हरिदासजी बोले : "पक्षियों की आवाज इस ढंग से होती है कि अग्नितत्त्व वातावरण से अलग हो जाता है, दिखता है । दीपक राग गाया जाय तो अग्नितत्त्व उभर भी सकता है ।"

ताना ने प्रार्थना की और गुरु ने दीपक राग, बरसात लाने का मल्हार राग व अन्य अनेक राग सिखा दिये । २० वर्ष की उम्र का ताना अब 'तानसेन' नाम से विख्यात होने लगा ।

एक बार राजा रामचंद के राज्य में अकाल पड़ा । उन्होंने राज्य के तमाम धनी लोगों को आमंत्रित किया और कहा : "मैं चाहता हूँ कि गरीब-असहाय लोगों को अन्न की और दूसरी थोड़ी मदद के लिए राज्य का धन तथा आप धनवानों का धन काम आये ।"

सभीने अपनी हैसियत के अनुसार अनुदान लिखवाया । तानसेन ने अपनी पत्नी के गहने-गाँठें राजा के चरणों में रखे ।

राजा ने कहा : "तानसेन ! तुम्हारे जैसे गायक से मैं ये गहने-गाँठें लूँगा ? तुमसे तो ऊँची चीज चाहिए ।"

"महाराज ! मैं समझा नहीं । मेरा सब कुछ आपका है ।"

"तुम गुरु की कृपा पा चुके हो, गुरु के बताये मार्ग के अनुसार भगवन्नाम से अंतर की कुछ यात्रा कर चुके हो । तुम मल्हार राग आलापोगे तो बरसात होगी और अकाल का कोप दूर हो जायेगा, प्रजा दम ले सकेगी ।"

"महाराज ! क्या आप मुझसे इतनी उम्मीद रखते हैं ?"

"हाँ ! नाम की कमाई, गुरु की रहमत दोनों तुम्हारे पास हैं । तुम केवल गायक नहीं हो, तुम शिष्य भी हो और साधक भी हो ।"

"महाराज ! जो गुरुदेव की इच्छा होगी ।"

तिथि तय हुई । जिस दिन मल्हार राग गाया जाना था, उस दिन अकबर का सिपहसालार ग्वालियर में था । उसने सोचा, 'मनुष्य राग गाये,

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग । जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ॥

'सतयुग, त्रेता और द्वापर में जो गति पूजा, यज्ञ और योग से प्राप्त होती है, वही गति कलियुग में लोग केवल भगवान के नाम से पा जाते हैं ।'

(श्रीरामचरित. उ.कां. : १०२ ख)

बादल मँडरायें और फिर बरसात हो !... यह मैं अपनी आँखों से देखूँगा ।'

नियत तिथि पर दरबार लगा हुआ था। तानसेन द्वारा वीणा-पुस्तकधारिणी सरस्वती देवी की स्तुति और **'गं गणपतये नमः'** से गणपतिजी का मंगलाचरण हुआ। मल्हार राग आलापना शुरू हुआ और देखते-ही-देखते बादल मँडराने लगे। राजदरबार से लोग जायें उसके पहले ही देवराज इंद्र के मेघों ने वृष्टि शुरू की और मल्हार राग ने सबके दिल को आनन्दित-उल्लसित कर दिया। अकबर का सिपहसालार देखता ही रह गया कि 'हद हो गयी ! इनसान की इतनी ताकत कि कुदरत के नियमों में परिवर्तन कर दे !!' उसने तानसेन की ऊँचाई की बातें अकबर को जाकर कहीं। अकबर ने तानसेन को राजा रामचंद से माँग लिया। तानसेन अकबर के दरबार में नौ रत्नों में सम्मानित हुआ।

तानसेन का सम्मान देखकर बहुत सारे संगीत के उस्ताद उसको नीचा दिखाने के लिए कुछ-न-कुछ लीलाएँ करते रहते थे लेकिन सफल नहीं हो पाते थे। आखिर उन्होंने एक उपाय खोज लिया कि 'हम सब मिलकर ऐसा षड्यंत्र रचें कि जिससे अकबर तानसेन को दीपक राग गाने के लिए मजबूर करें। दीपक राग गाने से बुझे दीप जल सकते हैं, तपन उभर सकती है और अग्नि प्रकट हो सकती है इसलिए दीपक राग गाना जोखिम से भरा है। तानसेन यह राग गाने से कतराता है। अब इसकी खबर लेंगे।'

उन्होंने अकबर को ऐसा भड़काया कि अकबर ने दीपक राग सुनने का हठ पकड़ लिया। तानसेन के समझाने पर भी अकबर ने अपना हठ न छोड़ा। आखिर दीपक राग आलापा गया और ज्यों-ज्यों रंग आता गया त्यों-त्यों तपन का एहसास होने लगा, बुझे दीप जलने लगे। राग पूरा हो उसके पहले तो सभा के कई लोग भाग खड़े हुए। अकबर को भी भागना पड़ा। आखिर तानसेन भी भागा-भागा अपनी पुत्री के पास गया कि ''मेघ राग गाओ।''

जब राग-रागिनियाँ गर्मी तथा शीतलता उत्पन्न कर सकती हैं तो भगवान के नाम और मंत्र सूक्ष्म जगत में, कारण जगत में और इस स्थूल जगत में अपना सात्त्विक प्रभाव उभारकर अकाल मृत्यु से तुम्हारे तन को, अकारण संकल्प-विकल्पों से तुम्हारे मन को, तुच्छ इच्छाओं से तुम्हारी बुद्धि को निकाल के सच्चिदानंद के सुख की लहरों में लहराने लग जायें तो क्या आश्चर्य है ? इसमें संदेह मत करना।

संत तुलसीदासजी ने कहा :

नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

भगवन्नाम से दसों दिशाओं में मंगल होता है।

साधारण शब्द भी प्रभाव रखते हैं। 'अंग्रेजो ! भारत छोड़ो।' यह नारा पकड़ रखा मोहनदास करमचंद गाँधी ने और लगे रहे तो भारत को अंग्रेजों के चंगुल से छुड़ाने में इस नारे ने बड़ा काम किया। व्यावहारिक शब्द जब व्यवहार-जगत में इतना प्रभाव करते हैं तो भगवन्नाम का वैसे ही अपना प्रभाव है और फिर वह भगवन्नाम किसी गुरु के द्वारा गुरुमंत्र के रूप में मिलता है तो शक्तिशाली साधन बन जाता है। गुरुमंत्र के साथ गुरु का शुभ संकल्प जुड़ा रहने से वह हमारे पाँचों शरीरों पर असर करता है और इन पाँचों शरीरों की शुद्धि होते-होते, इन शरीरों को जहाँ से सत्ता-स्फूर्ति मिलती है उस परमात्मा के साथ साधक की मुलाकात हो जाती है। जीवात्मा परमात्मा की अनुभूति करने में सफल हो जाता है। ❑

हरिनाम विहीनं तु मुखं निःसारमुच्यते। हरिनैवेद्यहीनस्तु पाको निःसार उच्यते ॥

'श्रीहरि के नामोच्चार से विहीन मुख और श्रीहरि को नैवेद्य के रूप में अर्पित किये बिना समस्त भोजन निःसार हो जाता है।'

(गरुड़ पुराण : १४.३७)

तीन बातें कर लो

- पूज्य बापूजी

तीन बातें साधक के लिए बहुत जरूरी हैं। ये तीन बातें तुमने कर लीं तो समझो सब कुछ कर लिया। एक बात, अपने दोषों को दूर करने के लिए तत्पर रहो। दूसरी बात, गुरु की स्थिति को समझो और तीसरी बात, अविद्या मिटाने के लिए यत्नशील रहो।

अपना दोष निकालने में तत्परता होनी चाहिए। जो भी दोष, जो भी विचार तुम्हारे मन को, तुम्हारी बुद्धि को, तुम्हारे चित्त को परमात्मा से, गुरुतत्त्व से या मुक्ति से दूर कर रहे हैं उनको उखाड़ फेंको।

महाराज ! कैसे उखाड़ फेंकें ?

सुबह सूर्योदय से पूर्व नहा-धोकर, पूर्वाभिमुख हो के आसन पर बैठ जाओ और लंबा श्वास लो। एक-एक आदत को, एक-एक दोष को मन से सामने लाकर 'हरि ॐ' की गदा मारकर भगाओ। श्वास पूरा भरकर एक दिन का संकल्प करो : 'हरि ॐ... हरि ॐ... हरि ॐ... दोष तुम जड़ हो और मैं चेतन हूँ। आज के दिन तुम मेरे जीवन में नहीं होगे।' एक दिन के लिए दोष निकालने में तुम सफल हो गये तो फिर दो दिन का संकल्प करो। दो दिन के लिए सफल हो गये तो फिर और चार दिन का करो।

दोष निकालने की एक युक्ति और बता देता हूँ। 'अपना दोष मैं निकाल रहा हूँ' - ऐसा समझ के निकालोगे तो बहुत देर लगेगी और मेहनत होगी। दोष निकलेगा तब भी अहंकार का खतरा है और नहीं निकाल सकोगे तब विषाद का खतरा है। सफलता में अहंकार और विफलता में विषाद छाने की संभावना है लेकिन दोष को जहाँ है वहाँ जानो और अपने ईश्वर में अथवा गुरुतत्त्व में स्थिति करके दोष को निकालो तो बड़ा आसान हो जायेगा। दोष मुझमें है ऐसा न सोचो। 'दोष शरीर में है, दोष बुद्धि में है, दोष मन में है, दोष मेरे संस्कारों में है। इन संस्कारों का दोष निकल रहा है। मैं तो निर्दोष नारायण चैतन्य का, सद्गुरु का सनातन पुत्र हूँ।' - ऐसा समझकर दोष निकालो और अपनेको गुरुतत्त्व में, आत्मतत्त्व में स्थित करो। इससे दोष निकालने में सफलता मिलेगी और सफलता का अहंकार नहीं आयेगा। कभी थोड़ी देर के लिए विफलता रही तो तुम हारकर-थककर दीन नहीं होगे। सुबह, दोपहर, शाम- जब भी मौका मिले तब दोष निकालने की इस तरकीब से अपने दोषों को चुन-चुन के निकालो। जैसे पैर में काँटा घुसा है तो युक्ति से निकालते हैं न ! चाहे दबा के निकालो, सुई से निकालो, नहीं तो फिर छोटे-मोटे चिमटे से निकालो। अगर नहीं निकलता तो गुड़ और हल्दी मिलाकर उसकी पुलटिस बनाकर बाँध दो तो फूलेगा फिर निकलेगा। ऐसे ही किसी नियम या व्रत की पुलटिस बाँधकर दोष निकालने की कोशिश करो तो निकलेगा।

दूसरी बात, गुरु की स्थिति को शिष्य समझे।

अभक्ष्य के भक्षण करने पर उससे उत्पन्न पाप-विनाश के लिए गोमूत्र, गोमय, दूध, दही तथा घी का पाँच दिन तक आहार करने का वर्णन 'वसिष्ठ स्मृति' में किया गया है :

गोमूत्रं गोमयं चैव क्षीरं दधि घृतं तथा। पंचरात्रं तदाहारः पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ (३७०)

गुरु की स्थिति जितनी समझेगा, उतना वह महान होगा । कहते हैं :

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध ।
तुलसी संगत साध की, हरे कोटि अपराध ॥

आधी में पुनि आध... आधी से भी आधी मतलब चौथाई घड़ी, छः मिनट साधु का संग हो तो करोड़ों अपराध दूर हो जाते हैं । हम तो घंटों भर साधु का संग करते हैं परंतु अपराध का, दोष का, पाप का जो फल है वह दुःख, परेशानी जाती नहीं । तो हमने साधु का संग अभी किया नहीं । अभी उनके श्रीविग्रह के सान्निध्य में बैठे हैं ।

सोचो, वे साधु पुरुष कहाँ रहते हैं ? शरीर में ? क्या वे शरीर को मैं मानते हैं ? अथवा अपनेको क्या मानते हैं ? वे जैसा अपनेको जानते हैं और जहाँ स्थित हैं, वहाँ जाने का प्रयत्न करो । गुरु की स्थिति को समझो । गुरु की स्थिति कहाँ है ? गुरु जाति में, संप्रदाय में, मत-पंथ में स्थित हैं क्या ?

नहीं । गुरुजी स्थित हैं अपने-आपमें, अपने स्वरूप में । ज्यों-ज्यों गुरु की स्थिति को समझेंगे त्यों-त्यों हृदय निर्दोष होता जायेगा, आनंदित होता जायेगा, ज्ञानमय होता जायेगा । ज्यों-ज्यों गुरु की स्थिति को समझेंगे, त्यों-यों हृदय मधुर बनता जायेगा और व्यवहार करते हुए भी निर्लेपता का आनंद आने लगेगा । ज्यों-ज्यों गुरु की स्थिति को समझेंगे, त्यों-त्यों उनके लिए हृदय विशाल होता जायेगा । ऋषि दुर्वासा एकदम कोपायमान हो जाते हैं, श्राप दे देते हैं किंतु एक बार जिसने दुर्वासाजी की स्थिति समझी वह कहेगा कि वे श्राप दे रहे हैं या कोपायमान हो रहे हैं- ऐसा क्यों कहते हो ? तुमको वे नहीं दिख रहे हैं । मैं उन्हें जानता हूँ ।

स्वामी विवेकानंदजी कहा करते थे, जो मैं तुम्हें दिखता हूँ, वह मैं नहीं हूँ । तुम मुझे समझो ।

गुरु में स्थिति करना मतलब जैसे उपनिषद् ब्रह्म के निकट का वर्णन करती है, ऐसे ब्रह्म के निकट आ जाना । मैं पहले भगवान शिव का, भगवान कृष्ण का, माँ काली का चित्र रखता था । इनका ध्यान करता था लेकिन जब सद्गुरु मिले तो **ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः...** गुरुदेव के ही चित्र का ध्यान करते-करते, उनसे मानसिक सम्पर्क करते-करते उनकी स्थिति के, उनके निकट आ जाता । वे चाहे शरीर से कितने भी दूर होते लेकिन मैं भाव से, मन से उनके निकट जाता तो उनके गुण, उनके भाव और उनकी प्रेरणा ऐसी सुंदर व सुहावनी मिलती कि मैंने कभी सत्संग किया नहीं, मेरे बाप-दादा ने भी नहीं किया । गुरु ने संदेशा भेजा : 'सत्संग करो ।' अब मैं सत्संग क्या करूँ ? किंतु गुरु ने कहा तो बस चली गाड़ी, चली गाड़ी तो तुम देख रहे हो, दुनिया देख रही है । तो गुरुतत्त्व में, गुरुदेव में स्थिति करके चलो ।

गुरु की स्थिति ज्यों समझेंगे, त्यों गुरु का उपदेश स्फुरेगा । गुरु का उपदेश उनका अनुभव है, उनका हृदय है, गुरु का उपदेश उनकी स्थिति है । **मन आकृतिः मुखे वर्तते** । तुम्हारे मन में क्या है यह मुख बता देता है । तुम कितनी ऊँचाई पर हो या कहाँ बैठकर बोल रहे हो- यह थोड़ी देर कोई तुम्हारी बात सुने तो पता चल जायेगा। ऐसे ही गुरुदेव सतत जो सत्संग की बातें कहते हैं, उनको पकड़ते हुए गुरुदेव की स्थिति में अपनी स्थिति की जा सकती है ।

गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम् ।

मंगल तो तपस्या से हो सकता है, देवी, देवता या भगवान के वरदान से हो सकता है परंतु परम मंगल भगवान के वरदान से भी नहीं होगा ।

अनात्मवन्तः पशुवद् भुञ्जते येऽप्रमाणतः । रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥

'जो मनुष्य निज स्वास्थ्य अर्थात् पथ्यादि का विचार किये बिना पशु की तरह केवल खाया करता है वह अनेक रोगों की जड़रूपी अजीर्ण जैसी व्याधि को प्राप्त होता है ।' **(सुश्रुत संहिता, चिकित्सास्थान : ३९.३)**

भगवान को गुरुरूप में मानोगे और भगवत्तत्त्व में स्थिति करोगे तभी परम मंगल होगा । इसलिए अष्टसिद्धि-नवनिधियों के धनी, संयम की मूर्ति, बुद्धिमानों में अग्रगण्य हनुमानजी भगवान रामजी की शरण गये । राम-तत्त्व में हनुमानजी ने स्थिति की और वे धन्य-धन्य हो गये !

गुरु जहाँ बैठे हैं, जो देना चाहते हैं और जिसका अंश दे रहे हैं उसके आगे तुम्हारा पूरा जगत कुछ मायने नहीं रखता । गुरु में स्थिति हो जाय तो पता चलेगा कि 'अरे, हम अपने-आपको कितना ठग रहे थे ! गुरु का अनुभव और गुरुदेव वास्तव में मेरे हैं । ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड का अधिष्ठाता सच्चिदानंद परब्रह्म परमात्मा मेरे हैं ।' - ऐसा अनुभव होगा और फिर गुरु की कृपा छलकेगी तो अनुभव होगा कि यह सब मेरी सत्ता से हो रहा है !

तीसरी बात, शिष्य में अविद्या मिटाने की तत्परता होनी चाहिए । अविद्या माने क्या ?

अविद्यमान वस्तुओं को सत्य समझने की जो बेवकूफी है उसको बोलते हैं अविद्या। उसे मिटा दो और वास्तविक समझ पा लो कि ये वस्तुएँ पहले नहीं थीं, बाद में नहीं रहेंगी लेकिन मेरा चैतन्य आत्मा-परमात्मा, मेरा गुरुतत्त्व सृष्टि के पहले था, अभी है और सृष्टि के बाद भी रहेगा । उसमें स्थिति कर लो । फिर तुम न चाहोगे तो भी तुम्हारी वाहवाही हो जायेगी क्योंकि तुमने सत्य में स्थिति की है, प्रकृति के स्वामी में स्थिति की है तो प्रकृति तुम्हारे अनुकूल हो जायेगी ।

चरणदास गुरु किरपा कीन्हीं ।
उलट गयी मोरी नैन पुतरिया ॥

संत चरणदासजी कहते हैं : गुरु ने कृपा की तो मेरी 'नैन पुतरिया' उलट गयी । माने क्या ? जो देखने की दृष्टि थी, जो समझने की दृष्टि थी, जो मापने का मापदंड था वह उलट गया, पलट गया । आज तक जो मैं अपनेको धन से धनवान मानता था वह मेरी मूर्खता थी । इसमें तो धन का बड़प्पन हुआ । पद से मैं अपनेको प्रतिष्ठित मानता था । देह और देह के लम्बे-नाटेपन को अपना 'मैं-मेरा' मानता था । देह के संबंधियों को 'मेरा' मानता था । यह जो मेरी बेवकूफी थी वह उलट गयी ।

तन सुकाय पिंजर कियो, धरे रैन दिन ध्यान ।
तुलसी मिटे न वासना, बिना विचारे ज्ञान ॥

ज्ञानी गुरु में स्थिति किये बिना, ज्ञानतत्त्व का विचार किये बिना चाहे सौ साल की समाधि लगा दो लेकिन समाधि छूटी तो वही अविद्या और वही अज्ञान रहेगा । अतः अज्ञान को मिटाने के लिए यत्नशील रहो ।

ये तीन सूत्रात्मक बातें हमारे जीवन में आ जायें तो बड़ा आराम हो जायेगा, इसी जन्म में अपना काम बन जायेगा, आत्मा में आराम हो जायेगा । ☐

जन्मदिवस पर महामृत्युंजय मंत्रजप व हवन

जन्मदिवस के अवसर पर महामृत्युंजय मंत्र का जप करते हुए घी, दूध, शहद और दूर्वा घास के मिश्रण की आहुतियाँ डालते हुए हवन करना चाहिए । ऐसा करने से आपके जीवन में कितने भी दुःख, कठिनाइयाँ, मुसीबतें हों या आप ग्रहबाधा से पीड़ित हों, उन सभीका प्रभाव शांत हो जायेगा और आपके जीवन में नया उत्साह आने लगेगा ।

महतः श्रेयसो मूलं प्रसवः पुण्यसंततेः । जीवितस्य फलं स्वादु नियतं स्मरणं हरेः ॥

'भगवान श्रीहरि का निरंतर स्मरण करना मनुष्यों के लिए महान श्रेय (कल्याण) का मूल है । यह पुण्यों की उत्पत्ति का साधन और जीवन का मधुर फल है ।' (गरुड़ पुराण : २२७.२)

विलक्षण है गीता का सार और उसके अनुभवनिष्ठ संत !

(गीता जयंती : २० दिसम्बर २००७)

सद्ग्रंथ शिरोमणि 'श्रीमद् भगवद्गीता' की विलक्षणता है कि वह थोड़े में बहुत कुछ बता देता है, जीव की बुद्धिरूपी छोटी-सी गागर में उपनिषदों के ज्ञान का अगाध सागर भर देता है। वह भी ऐसे साररूप में कि 'गीता' का अध्ययन-चिंतन करनेवाले लोग उसके एक-एक पद में एक-एक वैदिक महावाक्य के दर्शन करते हैं। **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म...'** **(छांदोग्य उपनिषद् : ३.१४.१)** वेदों के इस अंतिम ज्ञानोपदेश को, जो केवल परम सत्पात्र शिष्य अथवा पुत्र को ही ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु द्वारा प्रदान किया जाता था, उसे इस सद्ग्रंथ ने जन-जन के लिए और अत्यंत सरल, लोकभोग्य भाषा में मात्र एक शब्द में उपलब्ध कर दिया : **सदसच्चाहमर्जुन। (गीता : ९.१९)** 'हे अर्जुन ! सत्-असत् मैं (परमात्मा, ब्रह्म) ही हूँ।'

संसार में सब अलग-अलग दिखने पर भी तत्त्व से एक परमात्मा ही हैं और एक परमात्मा होते हुए भी वे अनेक रूप में दिख रहे हैं। जैसे, 'गीता' की अलग-अलग टीकाएँ होने पर भी गीता एक ही है। मनुष्यों के अनेक भेद (रंग, आकृति आदि) होने पर भी मनुष्य एक ही है। गाय के सैकड़ों भेद होने पर भी गाय एक ही है। ऐसे ही देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति, घटना आदि अनेक होने पर भी उन रूपों में भगवान एक ही हैं : **सदसच्चाहमर्जुन।**

गीताकार प्रेमावतार भगवान श्रीकृष्ण ने इसी परम सिद्धांत को अलग-अलग शब्दों में, सरल-से-सरल रूपों में वर्णित कर जीवों के प्रति अपने अहैतुक प्रेम का परिचय दिया है :

वासुदेवः सर्वम् – 'सब कुछ भगवान ही हैं।' **(गीता : ७.१९)**

यह ऐसा सिद्धांत है कि विभिन्न दर्शनों के मतभेदों को क्षण भर में विलय कर देता है और सारे वाद-विवादों का अंत ला देता है। चाहे कोई आरम्भवाद को मानता हो चाहे अजातवाद को, चाहे परिणामवाद को मानता हो चाहे विवर्तवाद को परंतु इन वादवालों में विवाद तब तक रहता है जब तक सूक्ष्म अहं बना रहता है। **'वासुदेवः सर्वम्'** को दृढ़ता से मान लेनेमात्र से अपने वाद का आग्रह और दूसरे वादों का खंडन दोनों छूट जाते हैं क्योंकि सब कुछ भगवान ही हैं। सत् भी भगवान हैं, असत् भी भगवान हैं – **सदसच्चाहमर्जुन।** और दोनों से परे भी भगवान ही हैं : **सदसत्परम्। (श्रीमद् भागवत : २.९.३२)**

'वासुदेवः सर्वम्' के बिना किसी भी साधनामार्ग में कृतकृत्यता का अनुभव नहीं होगा। इस सिद्धांत के बिना कर्म 'निष्काम कर्मयोग' में परिणत नहीं हो सकता, भक्ति परम रसमयी 'प्रेमाभक्ति' में परिणत नहीं हो सकती और ज्ञान 'कैवल्य ज्ञान' अथवा 'अद्वैत सिद्धि' में परिणत नहीं हो सकता- यह ऐसा परम सिद्धांत है।

विष्णुरेकादशीगीतातुलसी विप्रधेनवः। अपारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी॥

'भगवान विष्णु, एकादशी व्रत, भगवद्गीता, तुलसी, संयमी ब्राह्मण तथा गौ – ये छः इस संसार-सागर से मुक्ति दिलानेवाले हैं।' **(गरुड़ पुराण : २९.२४)**

भगवान तो जल, स्थल में सर्वत्र हैं, सुलभ हैं :

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

(ब्रह्मांड पुराण, विष्णुपंजर स्तोत्र)

परंतु उन्हें सर्वत्र देखनेवाले समदर्शी महापुरुष अति दुर्लभ हैं - **वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।** (गीता : ७.१९)

इसीलिए कहा गया है :

हरि दुरलभ नहिं जगत में, हरिजन दुरलभ होय ।

श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी ने भी दुर्लभ तीन चीजों में महापुरुषों के संग का उल्लेख किया है :

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥

'भगवत्कृपा ही जिनकी प्राप्ति का कारण है वे मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्त होने की इच्छा) और महापुरुषों का संग- ये तीनों ही दुर्लभ हैं ।'

(विवेक चूड़ामणि : ३)

हरि को रिझा लो तो भी सत्संग व सही समझ के अभाव में उनसे जगत के भोग ही माँगोगे और पाओगे परंतु ऐसे अति दुर्लभ, **'वासुदेवः सर्वम्'** दृष्टिवाले ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष को खोज लो और रिझा लो तो वे आपको भगवान से मिला देंगे ।

हरि रीझै जग देत हैं, हरिजन हरि ही देत ।

'वासुदेवः सर्वम्' ज्ञानवाले महापुरुषों की, सद्गुरुओं की कितनी महिमा है ! संत सहजोबाई के हृदय से स्फुरित वचन भी कितने यथार्थ हैं :

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ ।
गुरु के सम हरि को न निहारूँ ॥

संत तुकारामजी भी अपने सर्वत्र भगवद्-दृष्टिवाले सद्गुरु की महिमा हरि को सुनाते हैं : 'हे हरि ! हे विट्ठल ! मैंने गुरु की कृपा को पकड़ रखा है, अब तुम स्वाभाविक ही मुझे प्राप्त होओगे । तुम्हारी नामरूपी चोटी गुरुदेव ने मेरे हाथ में दी है, अब तुम कहाँ जाओगे ?'

गुरुमंत्र जपते-जपते सर्वत्र भगवद्दर्शन करते हुए अंत में तुकारामजी भी **'वासुदेवः सर्वम्'** के ज्ञान को उपलब्ध हो गये :

रामजी की चिड़िया रामजी का खेत ।
खा ले चिड़िया तू भर-भर पेट ॥

फिर उन्होंने अनेकों को इसी सिद्धांत का उपदेश दिया । संतों के वचन भले अलग-अलग हों परंतु उनका भावार्थ एवं लक्ष्यार्थ एक ही रहा है :

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत् ।

'आँखों में ज्ञानांजन लगाकर संसार को ब्रह्ममय देखना चाहिए ।'

जड़ मतिवाले बोलते हैं : 'सब कुछ भगवान ही हैं- यह कैसे हो सकता है ? जगत में ऐसा तो कहीं दिखता नहीं । गाय, भैंस आदि जानवर, विभिन्न पक्षी, मनुष्य, पेड़-पौधे, पहाड़ - ये अलग-अलग दिख पड़ते हैं और यही जगत कहलाता है, भगवान हैं ही कहाँ ?'

संत उन्हें पूछते हैं : जिन दिनों गेहूँ की खेती में जब गेहूँ का एक भी दाना नहीं मिलता तो भी वह खेती किस फसल की कहलाती है ? गेहूँ की । क्यों ? क्योंकि शुरू में इनके बीज बोये गये और अंत में इनसे इनके ही बीज प्राप्त होंगे, इसलिए बीच में भी इन्हें 'गेहूँ' की खेती कहा जाता है । ऐसे ही भगवान संसार की उत्पत्ति करनेवाले (आदि), संसार का प्रलय होने पर भी रहनेवाले (अंतिम) सनातन व अव्यय बीज हैं :

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ॥

'हे अर्जुन ! तू सम्पूर्ण भूतों का सनातन बीज मुझको ही जान ।'

(गीता : ७.१०)

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

'सबकी उत्पत्ति-प्रलय का हेतु, स्थिति का

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।

'बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाला ही लोगों के द्वारा वरण करने योग्य होता है ।' **(ऋग्वेद : ३.२७.९)**

आधार, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ।'

(गीता : ९.१८)

इसलिए संसार की उत्पत्ति के बाद के इस स्थितिकाल में भगवान स्थूल दृष्टि से न भी दिखते हों तो भी यह दिखनेवाला बगीचा या खेत भगवान का ही व्यक्त रूप है। वास्तव में संसार है ही नहीं, भगवान ही हैं : **वासुदेवः सर्वम्।**

ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु वसिष्ठजी महाराज ने जो दिव्य ज्ञान रामावतार में भगवान को सुनाया था, (हे रामजी ! तीनों काल में जगत बना ही नहीं।) वही गूढ़, सूक्ष्म ज्ञान जब भगवान अर्जुन के लिए सद्गुरु रूप लेकर अवतरित हुए, तब उन्होंने और अधिक सरल बनाकर अर्जुन के निमित्त से समस्त जगत को उपलब्ध करा दिया : **वासुदेवः सर्वम्।**

सद्गुरु-हृदय होता ही ऐसा है। सद्गुरु की भूमिका में अर्जुन के रथ पर आरूढ़ भगवान **'जैसी जिसकी चाकरी तैसा तिसे फल देत'** वाला न्याय-सिद्धांत भूलकर 'आ जा, ले जा' वाला सद्गुरुओं की 'अहैतुकी कृपा' का सिद्धांत अपना बैठे। फिर वे केवल अर्जुन के सद्गुरु कैसे कहलाते ?

'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' कहकर समस्त मानव-जाति उनके चरणों में कृतज्ञतापूर्वक शीश नवाती है।

संसार के सारे सिद्धांत पढ़ने से भी अधूरापन, उद्वेग, दुःख और अशांति मिटेगी नहीं व भगवान तथा ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों का **'वासुदेवः सर्वम्'** या **'सदसच्चाहमर्जुन'** वाला यह सिद्धांत, यह छोटी-सी बात दृढ़ता से मानलेनेमात्र से ऐसी सुख-शांति, निश्चिंतता और पूर्णता प्राप्त होगी, जिसके सामने संसार की कोई भी विपरीत परिस्थिति, भय, शोक, समस्या टिकेगी नहीं। ❑

क्या करें-क्या न करें

✻ दूसरे का अन्न, दूसरे का वस्त्र, दूसरे का धन, दूसरे की शय्या, दूसरे की गाड़ी, दूसरे की स्त्री का सेवन और दूसरे के घर में वास- ये इन्द्र के भी ऐश्वर्य को नष्ट कर देते हैं।

(शंखलिखित स्मृति : १७)

✻ जो मनुष्य अमावस्या को दूसरे का अन्न खाता है, उसका महीने भर का किया हुआ पुण्य दूसरे को (अन्नदाता को) मिल जाता है। अयनारम्भ के दिन दूसरे का अन्न खाये तो छः महीनों का और विषुवकाल (जब सूर्य मेष अथवा तुला राशि पर आये) में दूसरे का अन्न खाने से तीन महीनों का पुण्य चला जाता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के अवसर पर दूसरे का अन्न खाये तो बारह वर्षों से एकत्र किया हुआ सब पुण्य नष्ट हो जाता है। संक्रान्ति के दिन दूसरे का अन्न खाने से महीने भर से अधिक समय का पुण्य चला जाता है।

(स्कंद पुराण, प्रभास खं. : २०७.११-१३)

✻ जो निर्बुद्धि गृहस्थ अतिथि सत्कार के लोभ से दूसरे के घर जाकर उसका अन्न खाता है, वह मरने के बाद उस अन्नदाता के यहाँ पशु बनता है। **(मनुस्मृति : ३.१०४)**

✻ **अस्तकाले रविं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम्।**

'अस्त के समय सूर्य और चन्द्रमा को रोगभय के कारण नहीं देखना चाहिए।'

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्णजन्म खं. : ७५.२४)

✻ घर में टूटी-फूटी अथवा अग्नि से जली हुई प्रतिमा की पूजा नहीं करनी चाहिए। ऐसी मूर्ति की पूजा करने से गृहस्वामी के मन में उद्वेग या अनिष्ट होता है। **(वाराह पुराण : १८६.४३)** ❑

हितमितमेध्याशनं तपः। 'हितकर, मात्रानुरूप और मेध्य (बुद्धिवर्धक) आहार का सेवन एक प्रकार का 'तप' है।'

(श्रीभाष्य)

ध्यान से जगता है विवेक

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

राजकुमार सिद्धार्थ बगीचे में बैठे थे। उनका चचेरा भाई देवदत्त चंचलतापूर्वक इधर-उधर देख रहा था । सिद्धार्थ ने कहा : ''इधर-उधर क्या देखते हो ? शांत होकर बैठो, जरा ध्यान करो ।''

इधर-उधर ताकते रहनेवाला देवदत्त कहाँ पैदा हुआ और कहाँ मरा उसका कोई ठिकाना नहीं परंतु सिद्धार्थ को ध्यान करने की रीति पता थी तो वही युवक सिद्धार्थ आगे चलकर महात्मा बुद्ध होकर प्रसिद्ध हुए, हजारों लोगों के मार्गदर्शक बने। उन्होंने एकाग्रता का यह परम फल पाया । चाहते तो बड़ा राज कर लेते, चाहते तो बढ़िया रथों में घूम लेते, चाहते तो ऐश-आराम व भोग-विलास करके फिर नरकों में चले जाते लेकिन एकाग्रता का 'सदुपयोग' किया; सत्य तो एक परमात्मा है, उसीको पाने में एकाग्रता का उपयोग किया तो सिद्धार्थ में से बुद्ध हो गये। उनके हृदय में बचपन से ही विवेक था।

देवदत्त तीर-कमान लेकर पक्षियों को ताक रहा था। इतने में वहाँ से हंसों का एक टोला गुजरा। देवदत्त ने बराबर निशाना बनाकर एक हंस को गिरा दिया। वह हंस सिद्धार्थ के पास गिरा। सिद्धार्थ ने उसको प्यार से गोद में उठाया, धीरे-से हंस को लगा हुआ तीर निकालकर रखा। पत्तों को निचोड़-निचोड़कर उनका रस उसके घाव पर डाला और प्यार-से उस पर हाथ घुमाया। भावना थी कि 'यह बेचारा जीवित रहे, स्वस्थ हो जाय ।' उस भावना ने भी काम किया।

देवदत्त आया और बोला : ''भैया ! क्यों मेहनत कर रहा है ? यह हंस तो मेरा है। इसको तो मैंने तीर मारा है, मेरे को दे दे।''

सिद्धार्थ बोला : ''यह तेरा कैसे है ? यह तो मेरा हंस है, तुझे नहीं मिलेगा।''

''मैंने इसको तीर मारा है इसलिए यह मेरा है।''

''तुमने तो तीर मारा है किंतु मैंने तीर निकाला है और इसके घाव पर औषधि-वनस्पति के पत्तों का रस डालकर इसको जीवित रखा है। इसलिए यह मेरा है।''

''जिसने प्राणी का शिकार किया है वह उसीका होता है।''

''प्राणी उसका नहीं होता जो उसे मारता है अपितु उसका होता है जो उसे सहयोग करता है ।''

''अभी तेरी खबर लेता हूँ।'' कहकर सिद्धार्थ के पिता राजा शुद्धोधन के पास गया और फरियाद की। सिद्धार्थ को बुलाया गया।

सिद्धार्थ ने कहा : ''पिताश्री ! इसने तो इसे मारा और मैंने इसको बचाया। प्राणी पर जीवन देनेवाले का अधिकार होता है कि जीवन लेनेवाले का ?'' एकाग्र दृष्टि से पिता की ओर देखते हुए सिद्धार्थ ने स्नेह भरी वाणी में और भी दो नीति-वचन कहे।

शुद्धोधन का हृदय गद्गद हो गया। वे बोले : ''बेटा ! तू ठीक बोलता है, न्यायपूर्ण वचन कहता है। हंस पर तुम्हारा ही अधिकार है।''

सिद्धार्थ ध्यान की महत्ता जानते थे, तभी वे ऐसे विघ्न-बाधाओं को आराम से सुलझा देते थे और देवदत्त जैसे क्रूर स्वभाववाले को भी हार मानने के लिए मजबूर होना पड़ा। ❐

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति ।

'प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठनेवाला व्यक्ति रत्नों को धारण करता है।' (ऋग्वेद : १.१२५.१)

जगत की सब तृप्तियाँ नन्ही हैं आत्मतृप्ति के आगे

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

श्री वसिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! चित्त में समस्त वासनाओं से रहित होकर ज्ञानी भीतर से ऐसे शीतलता को प्राप्त करता है, जैसे चंद्रमा अमृत से अपने भीतर शीतलता को प्राप्त करता है।

हे रामजी ! तत्त्ववेत्ता मुनि अपने ही स्वरूप में उत्तम शांति से समन्वित ऐसे रहता है, जैसे वायुरहित (जहाँ हवा न चल रही हो ऐसे) प्रदेश में दीपक अपने स्वरूप में शांत रहता है और परम तृप्ति को ऐसे प्राप्त करता है जैसे अमृत पी जानेवाला पुरुष परम तृप्ति को प्राप्त करता है।''

आत्मतृप्ति के आगे दुनिया की सब तृप्तियाँ छोटी हो जाती हैं। धन से तृप्ति, सत्ता से तृप्ति, सौंदर्य से तृप्ति, स्वर्गीय सुखों से तृप्ति- ये इन्द्रियजन्य तृप्तियाँ हैं। प्रकृति के राज्य की जो भी तृप्ति है वह जीवात्मा को थकानेवाली है और **परमात्मा के राज्य की जो तृप्ति है वह जीवात्मा को पूर्णता से, माधुर्य से संपन्न कर देती है।** समझो, खूब धन चाहिए तो धन मिल गया। हाश ! तृप्त हो गये... लेकिन धन को सँभालो ताकि छूट न जाय, इसकी चिंता हो गयी। खूब सौंदर्य चाहिए... अच्छा सौंदर्य मिल गया लेकिन सौंदर्य भी ढल न जाय, इसकी चिंता हो गयी पर ढलेगा जरूर। खूब वाहवाही चाहिए... वाहवाही हो गयी लेकिन वाहवाही भी ढल जाती है। आखिर क्या ? कोई तृप्ति रहती नहीं है। न धन की तृप्ति रहती है, न सत्ता की तृप्ति रहती है, न सौंदर्य की तृप्ति रहती है। संसारी तृप्ति जीव को निचोड़ देती है लेकिन परमात्मा की तृप्ति जीव को तार देती है। ज्ञान तो कीड़ी के पास भी है, विज्ञान (साइंस) भी है। कीड़ी कम विज्ञानी नहीं है।

कीड़ियाँ एक जंतु घसीट के ले आयीं। देखा, अपने बिल में जाने की जगह छोटी है और जंतु बड़ा है तो कीड़ियों ने अपने ज्ञान को विज्ञान में बदला, साइंस लगायी कि क्या करें ? एक कीड़ी एक तरफ व दूसरी कीड़ी दूसरी तरफ हुई और जंतु को बराबर खींचते-खींचते उसके दो टुकड़े कर दिये। फिर प्रयत्न किया और देखा कि उसका आधा भाग भी बिल में नहीं जा रहा तो फिर उसका चौथाई-चौथाई किया। उसके बाद भी और थोड़ा छोटा करके उस जंतु को बिल में ले गयीं।

एक बार मेज पर मिठाई रखी थी। कीड़ियाँ आ गयीं। थाल में पानी भर के उसमें कटोरी रखी और उस पर मिठाई की प्लेट रख दी। अब कीड़ी महारानी का ज्ञान देखो ! कीड़ी दीवाल पर चढ़ी। दीवाल पर चढ़ते-चढ़ते जो मेज की तरफ तार लटक रही थी, उस तार के द्वारा नीचे आते-आते अपनेको ऐसा सीधा छोड़ा कि मिठाई पर जा गिरी। श्री अखंडानंदजी महाराज की यह बिल्कुल आँखों देखी बात है।

जो ज्ञान-विज्ञान कीड़ियों की बुद्धि में भरा है वह चैतन्य तो अभी भी है लेकिन जैसे कीड़ी की अक्ल पेट भरने और बच्चों को पालने में लगती है,

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः।

'देव जागृत पुरुषार्थी को ही चाहते हैं, तंद्राग्रस्त प्रमादी को नहीं।' **(ऋग्वेद : ८.२.१८)**

ऐसे ही मनुष्य की अक्ल भी इसीमें लगी रही तो मनुष्य ने कीड़े-मकोड़े से ज्यादा क्या उन्नति की ? हाँ, उसने यह उन्नति की कि ज्यादा चिंता-तनाव में रहा, ज्यादा अहं बना लिया, और ज्यादा कोई उन्नति नहीं की।

मनुष्य इससे ऊपर उठे। ज्ञानविज्ञान-तृप्तात्मा (आत्मा के ज्ञान व अनुभूति से तृप्त) हो जाय, कूटस्थ (विकाररहित) अपने विभुतत्त्व को 'मैं' रूप में जान ले। सुख-दुःख में सम रह जाय, जीवन-मृत्यु को सपना समझे और चैतन्य को अपना समझे। तभी तो कीड़े-मकोड़े, हाथी-घोड़े और देवताओं से भी मनुष्य को ऊँचा माना गया है।

मनुष्यैः क्रियते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः।

'जो ऊँचाई मनुष्य पा सकता है वह सुर और असुर भी नहीं पा सकते।' (ब्रह्म पुराण : २७.७०)

इस प्रकार मनुष्य की उन्नति इसमें है कि अपने ज्ञान-विज्ञान को इतना बढ़ाये कि **ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा** हो जाय। ज्ञान-विज्ञान का जो आधार है आत्मा, उसमें तृप्ति पाये।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः॥

'जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर तथा सुवर्ण समान हैं, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है।'

(गीता : ६.८)

जैसे सुनार के यहाँ कई गहने बनते हैं, बन-बनकर चले जाते हैं लेकिन गहने बनानेवाली अहरन ज्यों-की-त्यों है, ऐसे ही मन के, बुद्धि के, शरीर के हाव-भाव कई होते हैं, फिर भी जो नहीं बदलता वह विज्ञानानंदघन परमात्मा है। 'घन' माने ठोस, जिसमें किसी वस्तु का प्रवेश न हो। लोहा घन है ? नहीं, लोहे में अग्नि प्रविष्ट हो जाती है लेकिन परमात्मा इतना घन है कि उसमें कोई दूसरा कचरा या किसी दूसरे तत्त्व का प्रवेश नहीं होता। वह अपने-आपमें पूर्ण सबका बाप है। ऐसा परमात्मा अपना आत्मा बनकर बैठा है। बुद्धि अच्छा काम करती है या बुरा काम करती है इसको जाननेवाला विज्ञानानंदघन है। गुरुकृपा से कुंजी मिलती है और साधना के द्वारा अंदर का रस जगता है, तब साधक 'ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा' बन जाता है। फिर उसके लिए लोहा और सोना- सब संसारी चीजें हैं। बड़ा घर, छोटा घर- सब कुछ चल जायेगा। वह अपने-आपमें तृप्त हो जाता है। वह अपने अमर आत्मा का ज्ञान-विज्ञान पाकर अमरता का अनुभव करता है। वह तो तर जाता है लेकिन उसके वचनमात्र से लोग भी तर जाते हैं, वह ऐसे आत्मपद को पा लेता है, जहाँ इन्द्रपद भी छोटा हो जाता है। ❐

वैराग्य का स्वरूप

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

'जिसने स्वयं को मुझे सौंप दिया है, वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्मा का पद चाहता है और न देवराज इन्द्र का, उसके मन में न तो सार्वभौम सम्राट बनने की इच्छा होती है और न वह स्वर्ग से भी श्रेष्ठ रसातल का ही स्वामी होना चाहता है। वह योग की बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्ष तक की अभिलाषा नहीं करता।'

(श्रीमद्भागवत : ११.१४.१४)

अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्।

'ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हमें दुर्गति से, निन्दनीय पाप, दुःख और दुष्कर्मों से निरन्तर बचाये।' (यजुर्वेद : ४.१५)

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

प्रह्लादजी बोले : ''हे देवराज इन्द्र ! प्रकृति और धर्माधर्म के फलस्वरूप उसके विकार सुख-दुःखादि में मुझे न प्रीति है, न द्वेष । इस समय मैं किसीको भी न तो अपना शत्रु ही देखता हूँ और न किसीको पुत्र, मित्र, पत्नी आदि की भाँति ममता करने योग्य ही देखता हूँ । मैं न कभी स्वर्ग की कामना करता हूँ, न पाताल की और न मर्त्यलोक की ।

आत्मा धर्म-अधर्म और उसके फलस्वरूप सुख-दुःख का आश्रय नहीं है, इसीलिए मैं कुछ कामना नहीं करता, प्रत्युत सब कुछ मानता हुआ भी मैं केवल ज्ञान से तृप्ति-लाभ कर कामनारहित हो यहाँ आनंदपूर्वक निवास करता हूँ ।''

यह श्रेष्ठ एवं सारभूत उपदेश सुनकर इन्द्र को परम भागवत प्रह्लादजी के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ और उन्होंने लज्जित होकर बड़े ही विनीत भाव से पूछा :

''येनैषा लभ्यते प्रज्ञा येन शान्तिरवाप्यते ।
प्रब्रूहि तमुपायं मे सम्यक् प्रह्लाद पृच्छतः ॥

हे प्रह्लाद ! आपके सदृश ज्ञान-बुद्धि और शांति जिस उपाय से प्राप्त हो सकती है, कृपया वह उपाय मुझसे भलीभाँति कहिये ।''

प्रह्लादजी ने कहा : ''**हे सुरराज ! सरलता, सावधानी, इन्द्रिय-दमन, बुद्धि की प्रसन्नता, निर्मलता और ज्ञानवृद्धों की सेवा से पुरुष परम पदरूप मोक्ष को प्राप्त होते हैं** । मनुष्य स्वभाव ही से ज्ञान-लाभ करता है और स्वभाव ही से उसे शांति प्राप्त होती है । आप जो कुछ मुझमें और अपनेमें देखते हैं वे सब गुण अथवा दोष स्वभाव-संबंधित ही हैं ।''

प्रह्लादजी के तत्त्वमय वचनों को सुनकर तथा अपनेमें कुटिलता, इन्द्रियलोलुपता आदि दुर्गुणों को देखकर देवराज इन्द्र बड़े ही लज्जित हुए । उन्होंने अपने किये हुए कपट-व्यवहारों के लिए प्रह्लादजी से क्षमा-याचना की और कहा :

''हे तपस्वी प्रह्लाद ! मैंने छल से आपका शील हर लिया था, आप उसे पुनः स्वीकार करें । मैं इस ज्ञान-शिक्षा की गुरुदक्षिणा के रूप में उसे आपके चरणों में समर्पित करता हूँ । आपसे मेरी यह विनम्र प्रार्थना है कि मेरा आमंत्रण स्वीकार कर स्वर्गवासियों को कृतार्थ करने के लिए आप एक बार स्वर्ग पधारने की कृपा करें ।''

प्रह्लादजी को न्यौता देकर इन्द्र अमरावती लौट गये और शीलसम्पन्न प्रह्लादजी ने हिरण्यपुर की ओर प्रस्थान किया ।

भगवद्भक्तों का अनिष्ट करने का कोई कितना भी प्रयत्न करे और कभी कुछ समय के लिए अनिष्ट होता-सा भासित भी हो परंतु भक्तों का इष्ट मजबूत होने से अनिष्ट हो नहीं सकता । इसलिए भक्तों को ऐसी परिस्थितियों में प्रह्लादजी की तरह धैर्य धारण कर भगवान के स्मरण-चिंतनरूपी साधन में संलग्न रहना चाहिए ।

(क्रमशः) ❑

भक्ति का स्वरूप

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ ॥

श्री कपिल भगवान ने कहा : 'जिस प्रकार अनेक पर्वतों को भेदकर गंगा का प्रवाह अखण्डरूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति का तैलधारावत् अविच्छिन्नरूप से मुझ सर्वांतर्यामी के प्रति हो जाना यह भक्ति का स्वरूप है ।' (श्रीमद्भागवत : ३.२९.११)

धनुरासन या सुप्त उष्ट्रासन

इस आसन में शरीर का आकार धनुष के समान हो जाता है। एक-दूसरे को खींचते हुए पैर व हाथ का आकार प्रत्यंचा (डोरी) के समान हो जाता है। इसलिए इसे 'धनुरासन' कहते हैं।

धनुरासन के अभ्यास से -

१. कब्ज की शिकायत बिल्कुल नहीं रहती।

२. जठराग्नि प्रदीप्त होती है व पेट में यदि किसी प्रकार का दर्द हो तो ठीक हो जाता है।

३. खिसकी हुई नाभि अपने स्थान पर आ जाती है। नाभि यथास्थान पर आने के बाद भी इस आसन का अभ्यास अवश्य करते रहना चाहिए। जो व्यक्ति इस आसन का अभ्यास सदैव करता रहेगा उसकी नाभि कभी खिसकेगी ही नहीं।

४. मोटापा दूर करने में मदद मिलती है। मोटे व्यक्ति नित्य १०-१५ मिनट अभ्यास करें।

५. रीढ़ की हड्डी लचीली बनती है तथा बुढ़ापा जल्दी नहीं आता।

६. रोग दूर करने के लिए भी यह आसन मुख्य माना गया है। मधुमेह, गैस व आँतों की तकलीफवाले मरीजों के लिए यह आसन वरदानस्वरूप है। जिन्हें कोई बीमारी न हो और जो अपना स्वास्थ्य अच्छा रखना चाहते हों, उन्हें प्रतिदिन इसका अभ्यास करना चाहिए।

जो नित्य हलासन, मयूरासन व धनुरासन करता है वह कदापि आलसी नहीं बनता। वह हमेशा फुर्तीला, कार्यशील व शक्तिशाली रहता है।

विधि : पेट के बल लेटिये। दोनों हाथ बगल में सटाकर रखिये। पैरों को उठाकर पीछे की ओर मोड़िये। हाथों से टखनों को भलीप्रकार पकड़िये। खूब श्वास भरकर सीना व सिर ऊपर की ओर उठाइये। हाथों को सीधा व कड़ा बनाइये। पैरों को भी कड़ा बनाइये। दोनों घुटनों को साथ-साथ रखिये। जितना समय सुखपूर्वक इसे कर सकें, उतना ही समय करें।

सावधानी : यह आसन हर्निया की शिकायतवालों को बिल्कुल नहीं करना चाहिए। ❑

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) 'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की **शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।**

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्। 'हे प्रभु! आप हम सबको कल्याणकारक मन, कल्याणकारक बल और कल्याणकारक कर्म प्रदान करें।' (ऋग्वेद : १०.२५.१)

स्वास्थ्यकारक नुस्खे

* रोज हरी अथवा सूखी मेथी का सेवन करने से शरीर के ८० प्रकार के वायु-रोगों में लाभ होता है।
* नूतन ज्वर में तेज वायु का सेवन, दिन में अधिक समय तक शयन, स्नान, मालिश, मैथुन, क्रोध और परिश्रम करना हानिकारक है ।
* पुराने ज्वर में रोगी को घी और दूध अवश्य देना चाहिए । **'सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भैषज्यमुत्तमम्'** इस वचन से पुराने ज्वर में दूध को उत्तम औषध माना है । नये ज्वर में दूध को साँप के जहर जैसा हानिकारक कहा गया है।
* ज्वर चले जाने के पश्चात् जब तक शरीर में शक्ति न आये तब तक मैथुन, व्यायाम, यात्रा करना, देर से पचनेवाला भोजन, सूर्य के ताप या वायु का अति सेवन और ठंडे जल से स्नान करना हितकर नहीं है ।
* सब प्रकार के उदर-रोगों में मट्ठे और गौमूत्र का सेवन अति लाभदायक है ।
* स्वप्नदोष में रात्रि को मधुर पदार्थ का सेवन, रात्रि को भात खाना, अजीर्ण में भोजन, वातल पदार्थों का अति सेवन, खट्टा पदार्थ खाना, तम्बाकू, चाय आदि हानिकारक हैं। प्रातः, सायं स्वच्छ वायु में घूमना, दीर्घ श्वास लेना, सात्त्विक भोजन, ईश्वर-स्मरण, रात्रि को भोजन के बदले केवल दूध पीना - ये सब लाभदायक हैं।
* नेत्ररोग में गुड़, मिर्च, तेल, शुष्क अन्न, कब्जकारक पदार्थ और रात्रि जागरण - इन सबका त्याग करना चाहिए । त्रिफला रसायन का उपयोग करना चाहिए ।
* कान के रोग में रस आदि औषधि प्रातः और तेल आदि औषधि सूर्यास्त के बाद डालनी चाहिए।

शीतकाल में सेवनीय :

बबूल व पलाश की गोंद, शतावरी, अश्वगंधा, काली मूसली, सफेद मूसली, यष्टिमधु व तालमखाना के बीज प्रत्येक २०-२० ग्राम व मिश्री १६० ग्राम पीसकर चूर्ण बनाकर रखें। ८-१० ग्राम चूर्ण सुबह-शाम गरम दूध के साथ लेने से वीर्य की वृद्धि व शरीर की पुष्टि होती है। शीतकाल में इसका सेवन विशेषतः धातुक्षीणता दूर करने के लिए किया जाता है। □

शरीरपुष्टि के प्रयोग

* १ से २ ग्राम सोंठ एवं उतनी ही शिलाजीत खाने से अथवा २ से ५ ग्राम शहद के साथ उतना ही अदरक लेने से शरीर पुष्ट होता है ।
* ३ से ५ अंजीर को दूध में उबालकर या अंजीर खाकर दूध पीने से शक्ति बढ़ती है ।
* १ से २ ग्राम अश्वगंधा चूर्ण को आँवले के १० से ४० मि.ली. रस के साथ १५ दिन लेने से शरीर में शक्ति आती है ।
* रात्रि में एक गिलास पानी में एक नींबू निचोड़कर उसमें दो किशमिश भिगो दें । सुबह पानी छानकर पी जायें एवं किशमिश चबाकर खा लें। यह एक अद्भुत शक्तिदायक प्रयोग है ।

'ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि

२५ व २६ सितम्बर को प्रोष्ठपदी पूर्णिमा दर्शन-सत्संग नई दिल्ली के राजौरी गार्डन के विशाल प्रांगण में संपन्न हुआ। 'गीता' को राष्ट्रीय ग्रंथ का दर्जा दिये जाने की इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पहल का स्वागत करते हुए गीतामर्मज्ञ पूज्यश्री ने कहा : ''आप गीता, गौ और गंगा का फायदा लेना आरंभ करें तो आपका शरीर स्वस्थ रहेगा, मन प्रसन्न रहेगा और बुद्धि में प्रखरता आयेगी। 'गीता' भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निकली वह अमृतधारा है, जो युगों-युगों से भंटकते हुए प्राणियों को श्रेष्ठ जीवन जीने की कला सिखा रही है।''

२६ सितम्बर को पूर्णिमा के अवसर पर दिल्ली के अलावा इन्दौर हवाई अड्डे व उज्जैन आश्रम पर भी हजारों पूनम व्रतधारी शिष्यों ने परम पूज्य सद्गुरुदेव के दर्शन कर अपना व्रत पूर्ण किया। उल्लेखनीय है कि पूज्यश्री दिल्ली से जहाज द्वारा इन्दौर पहुँचे थे। तदुपरान्त देर रात उज्जैन आश्रम पहुँचे थे, जहाँ अगले ही दिन २७ से ३० सितम्बर तक 'साधना सत्संग समारोह' संपन्न हुआ। नानाखेड़ा क्षेत्र में बने विशाल पंडाल से आध्यात्मिकता की रसधार संपूर्ण मालवा व निगाड़ क्षेत्र में प्रवाहित होती रही।

यहाँ उपस्थित भक्तों को ब्रह्मज्ञान के अमृतरस का पान कराने के बाद योगमर्मज्ञ पूज्य बापूजी ने व्यावहारिक ज्ञान पर प्रकाश डालते हुए कहा : ''आज के युवाधन की बड़ी हानि हो रही है। लोग क्लबों में नाचते हैं, फिर खड़े-खड़े पेप्सी, कोका आदि पीते हैं। यही स्थिति रही तो ४०-४२ साल की उम्र में हमारी नयी पीढ़ी कितनी पीड़ाओं का शिकार हो जायेगी- यह कहना मुश्किल है क्योंकि नाचते हैं तो शरीर गरम हो जाता है, फिर खड़े-खड़े पेप्सी आदि कोल्डड्रिंक्स पीते हैं तो तुरंत शरीर के तापमान में बदलाव आ जाता है। इसके दुष्प्रभाव से बुढ़ापा जल्दी आयेगा। खड़े-खड़े पानी पीते हैं तो आगे चलकर पैरों की पिण्डलियों में दर्द की शिकायत होगी। फिर पैर दबवा-दबवाकर, भीख माँग-माँगकर नींद आयेगी तो आयेगी, नहीं तो दर्द-निवारक गोलियाँ (पेनकिलर) खानी पड़ेंगी। वे भी तो नुकसान करेंगी। मुझे मेरे शरीर की इतनी चिंता नहीं है, जितनी आनेवाली पीढ़ी की, युवा पीढ़ी की चिंता है।''

पूर्वनिर्धारित ३ दिवसीय कार्यक्रम समिति के विशेष आग्रह पर एक दिन बढ़ाया गया। इस दौरान राज्य के लोक निर्माण मंत्री, शिक्षा राज्यमंत्री, उज्जैन विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष व अनेक गणमान्य व्यक्तियों तथा पुण्यात्माओं ने माल्यार्पण कर आशीर्वाद लिया।

२८ सितम्बर आश्विन कृष्णपक्ष दूज को पूज्यश्री के पिताश्री ब्रह्मलीन पूज्य थाऊमलजी सिरुमलानी का विधिवत् श्राद्ध उज्जैन आश्रम में पूज्यश्री के करकमलों से संपन्न हुआ।

५-६ अक्टूबर को मक्शी (म.प्र.) में पहली बार पूज्यश्री का सत्संग हुआ। इस दौरान कायथा आश्रम में भी पूज्यश्री का पदार्पण हुआ। ८ अक्टूबर को ग्वालियर (म.प्र.) पहुँचने पर हवाई अड्डे पर पूज्यश्री का आत्मीय स्वागत हुआ।

मा प्र गाम पथो वयम्। 'हम सुपथ से कुपथ की ओर न जायें।' (ऋग्वेद : १०.५७.१)

९-१० अक्टूबर को दो दिवसीय सत्संग ग्वालियर के नाम रहा। यहाँ वर्तमान समय को एक संगमकाल की संज्ञा देते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''पाश्चात्य की कितनी ही आँधियाँ आयें, हमारी संस्कृति अमर है । हम सत्य के अनुगामी हैं। भारत का भविष्य उज्ज्वल दिख रहा है। वर्तमान समय एक संगमकाल है । जिस प्रकार गंगा की लहर सारी गंदगी को अपने साथ ले जाती है, उसी प्रकार सारी बुराइयाँ हमारी सत्य सनातन संस्कृति के एक आवेग के साथ बह जायेंगी।''

मीडिया जगत के अच्छे लोगों का हौसला बुलंद करते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''जिस प्रकार कई क्षेत्रों में गलत लोग घुस रहे हैं, वैसे ही मीडिया में भी अवांछनीय तत्त्व प्रवेश कर रहे हैं । इन्हीं तत्त्वों के कारण समाज में इसका प्रभाव घट रहा है और इसकी सच्चाई पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं। मीडिया की अहम भूमिका का ठीक निर्वाहण तभी होगा, जब इसमें अवांछनीय तत्त्वों का प्रवेश बंद हो जायेगा । मीडिया के ठीक लोग अपनी सात्त्विक दिशा पर दृढ़ रहें, समाज सकारात्मक करवट लेगा ही।''

११ अक्टूबर को ग्वालियर से सरमथुरा (राज.) जाते हुए धौलपुर और मुरैनावासियों ने भी दर्शन-सत्संग से कृत्कृत्यता का अनुभव किया। फिर शाम को सरमथुरा में सत्संगामृत की वर्षा हुई। स्थानीय ग्रामीण-श्रद्धालु लोकलाड़ले परम पूज्य बापूजी को अपने इस छोटे-से गाँव में अपने बीच पाकर हर्षित-आनंदित हुए । अगले दिन सुबह सरमथुरा आश्रम में मंत्रदीक्षा का कार्यक्रम संपन्न हुआ । तत्पश्चात् १२ से १४ अक्टूबर को आयोजित ३ दिवसीय सत्संग हेतु पूज्यश्री आगरा आश्रम (उ.प्र.) पहुँचे । यहाँ पूज्य बापूजी के दर्शन-सत्संग के लिए आस्था का सैलाब उमड़ पड़ा ।

पूज्य बापूजी का साक्षात्कार दिवस १३ अक्टूबर आगरा के सत्संगियों के सौभाग्य में रहा । ऐसे तो पूज्यश्री का सत्संग सुनने के लिए भक्तजन हमेशा उत्कंठित रहते हैं लेकिन इस पावन दिन देश-विदेश के कई आश्रमों में लोगों ने विडियो कॉन्फ्रेन्स से सत्संग का लाभ लिया। जहाँ विडियो कॉन्फ्रेन्स नहीं पहुँच पाया वहाँ टेलिफोन से सत्संग पहुँचा । अमदावाद आश्रम से पुछवाया गया कि 'मीठे प्रसाद में क्या-क्या बनायें ?'

पूज्य बापूजी ने सोचा कि 'यह साक्षात्कार दिवस नवरात्रि के दिनों में आता है। देर से पचनेवाले भारी या मीठे पदार्थ नहीं खाने चाहिए। नवरात्रि ऋतु-परिवर्तन काल है ।'

परम हितैषी पूज्य बापूजी ने कहा :

''कोई व्यंजन नहीं बनाना । सादा-सूदा बनाकर खाओ, नहीं तो उपवास करना । अभी तक ईश्वरप्राप्ति की लगन नहीं लगी इसलिए रोना कि बापूजी ने तड़प-तड़पकर ईश्वर को पा लिया और हमने अभी तक नहीं पाया । रोना न आये तो झूठ-मूठ में रोना, कभी-न-कभी सच्चा रोना आ जायेगा और ईश्वर उसे स्वीकार कर लेगा। हृदय में हृदयेश्वर प्रकट भी हो जायेगा।'' ❑

पूज्यश्री के आगामी सत्संग-कार्यक्रम

बड़ौदा (गुज.) में दिनांक 22 से 25 नवम्बर

सत्संग स्थल : नवलखी मैदान, राजमहल।

संपर्क : ०२६५-२६८०८४४, ९८२५८७९३३०, ९८२५०९९५६२, ९४२८७६११९९.

✻ प्रेता जयता नर। 'आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो।' (ऋग्वेद : १०.१०३.१३)

✻ मा भेर्मा संविक्था ऊर्ज्जं धत्स्व । 'हे मानव ! डर मत, काँप मत। बल, पराक्रम और साहस धारण कर।' (यजुर्वेद : ६.३५)

पूज्य बापूजी के आत्मसाक्षात्कार दिवस पर विभिन्न स्थानों पर निकाली गयी संकीर्तन यात्राओं की कुछ झाँकियाँ

पूज्य बापूजी के सत्संग की सी.डी.

पूज्य बापूजी के लोक-मांगल्यकारी प्रवचन अर्थात् लौकिक-आध्यात्मिक उन्नति की कुंजियों, महापुरुषों के प्रेरक प्रसंगों, शास्त्रीय सूत्रों आदि का अद्भुत संगम।

1 November 2007
RNP. NO. GAMC 1132/2006-08
WPP LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2006/08
WPP LIC NO.U(C)-232/2006/08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. MH/MR/14/07
'D' NO. MH/MR/TECH-47/4/07

Posting at Rishi Prasad PSO between 1" to 14" of E.M. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND.PSO on 5" & 6" of E.M. * Posting at Mbi Patrika Channel on 9" & 10" of E.M.
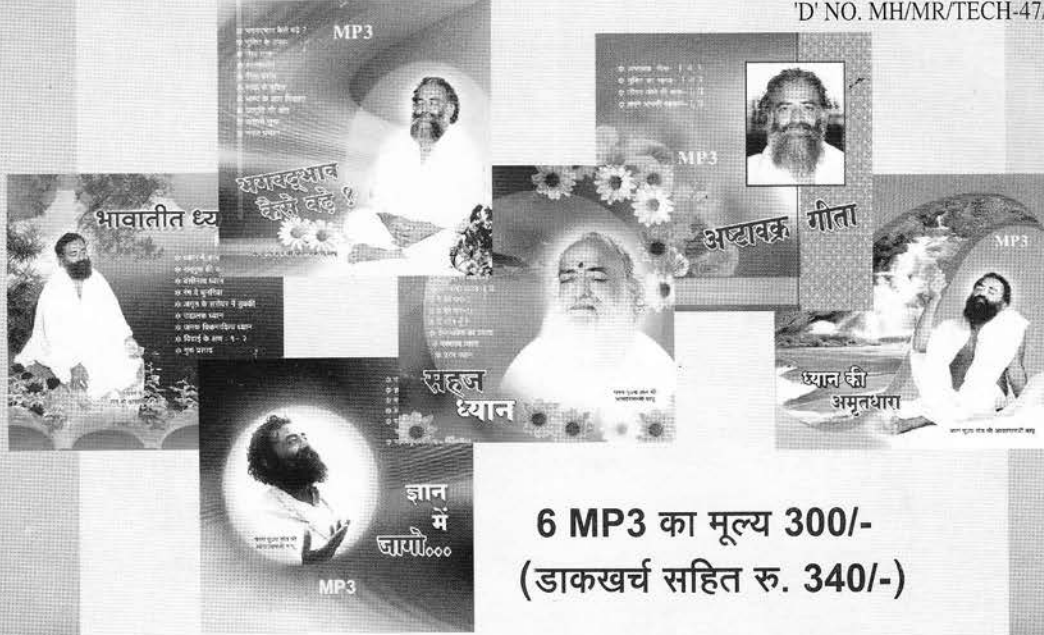
6 MP3 का मूल्य 300/-
(डाकखर्च सहित रु. 340/-)

वी.पी.पी. की सुविधा नहीं है। डी.डी., मनीऑर्डर भेजते समय अपनी माँग एवं अपना नाम, पूरा पता, पिनकोड व फोन नं. अवश्य लिखें।
पता : कैसेट विभाग, संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५.

सर्वपितृ अमावस्या के दिन पितरों का सामूहिक श्राद्ध व तर्पण करते साधक।

सूरत (गुज.) जम्मू (जम्मू-कश्मीर) लुणावाड़ा, जि. पंचमहाल (गुज.)

जुनागढ़ (गुज.) उल्हासनगर, जि. थाने (महा.) राजकोट (गुज.)